श्रमजीवी

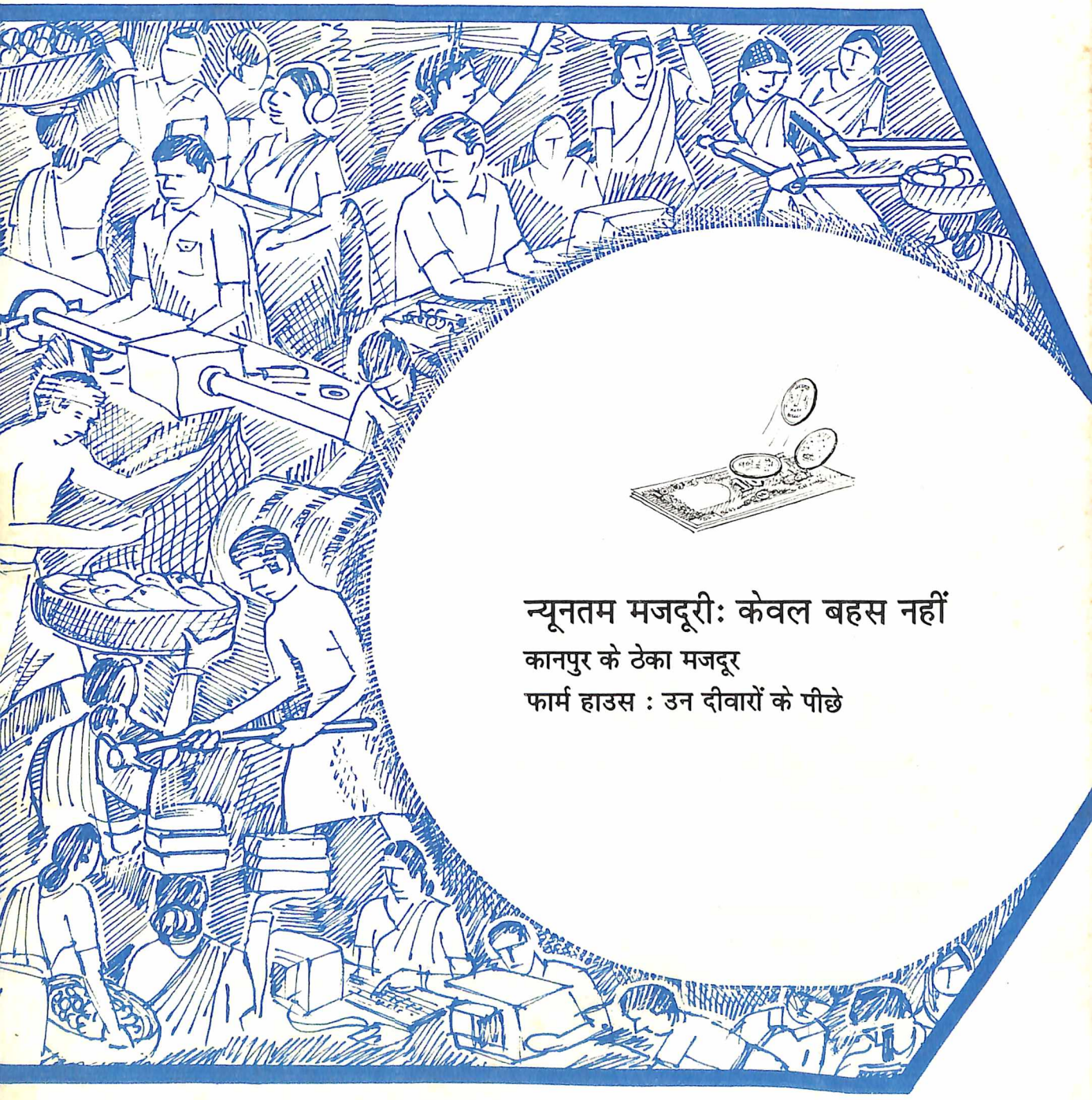

न्यूनतम मजदूरी: केवल बहस नहीं

कानपुर के ठेका मजदूर

फार्म हाउस : उन दीवारों के पीछे

वर्ष 1 अंक 1 जनवरी-मार्च 1998

श्रमजीवी

श्रम व आर्थिक विषयों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 1 अंक 1 जनवरी–मार्च 1998

सलाहकार मंडल
मुचकुन्द दुबे
थामस कोचरी
अनुराधा चेनॉय
डी० थंकप्पन
असीम राय
दुआर्ते बरेटों

सम्पादक:
जे० जॉन
मुकुल शर्मा

इस अंक के लिए विशेष सहयोग:
देवी प्रसाद मिश्र

सम्पादकीय सहायक:
सिंधु मेनन

आवरण
अविनाश देशपांडे

सहयोग राशि
एक प्रति : 12 *रूपए*
वार्षिक : 40 *रूपए*

प्रकाशकीय पता:
सेंटर फॉर एजुकेशन एंड कम्युनिकेशन
173 *ए, खिड़की गाँव, मालवीय नगर*
नई दिल्ली–110 017
फोन: 011 6232755, 6232758, *फैक्स* 011 6286842
E-mail: cec@nda.vsnl.net.in

संपादकीय

हाल के दशकों में श्रम और श्रमिकों की दुनिया काफी तेजी से बदली है। अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण है। बहुराष्ट्रीय निगमों का बढ़ता शिकंजा है। विश्व व्यापार संगठन के उदय के साथ–साथ गरीब और विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं में बुनियादी परिवर्तन के ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम हैं। और श्रमिक आन्दोलन के सामने कई नए सवाल और चुनौतियाँ हैं । इसी बदलते समय में, कोई दो साल पहले, जब हमने अंग्रेजी में *'लेबर फाइल'* का मासिक प्रकाशन शुरू किया, तब यही मकसद था कि देश के श्रमिक आन्दोलन के सामने पेश चुनौतियों पर विचार–विमर्श का एक व्यापक माध्यम बनाया जाए। श्रमिकों के मुद्दे और आन्दोलन अभिव्यक्त करने वाली श्रम पत्रकारिता विकसित की जाए और विशेषकर, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की विशाल संख्या की समस्याओं और संघर्षों पर ध्यान दिया जाए।

लेबर फाइल की यात्रा जारी है। इसी क्रम में हमें लगातार इस जरूरत का अहसास हुआ और बार–बार साथियों, संगठनों के जरिए अहसास कराया गया कि भारतीय भाषाओं में भी लेबर फाइल की जरूरत है। यानि एक नही, कई एक लेबर फाइल की जरूरत है। इसीलिए एक और शुरूआत करते हुए हमने हिन्दी में भी पत्रिका प्रकाशित करने का फैसला किया है।

लेबर फाइल हिन्दी में केवल अनुवाद नहीं है। यह अनुवाद होकर हिन्दी भाषी प्रदेशों में श्रमिकों और श्रमिक संगठनों की चुनौतियों से रूबरू हो भी नही सकती है। देश और दुनिया की आर्थिक नीतियों में बदलाव का इन प्रदेशों पर भी व्यापक प्रभाव है, पर यहां की विशिष्ट सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ, सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन की सीमाएं, श्रमिक संगठनों की कमजोरियाँ, आदि बदली हुई आर्थिक नीतियों के साथ मिलकर कहीं ज्यादा जटिल और चुनौती भरा परिदृश्य सामने लाती हैं। यहीं पिछले दो दशकों में श्रमिक और उनके आन्दोलन कई जातीय, सांप्रदायिक उभारों से गुजरे हैं। और यहीं ग्रामीण अंचलों में, विशेषकर असंगठित क्षेत्र में, श्रमिकों की उल्लेखनीय लड़ाइयाँ और उनकी सामाजिक–राजनैतिक अभिव्यक्तियाँ उभर रही हैं। उम्मीद है, हम अपनी भाषाई पहल में सामान्य और विशिष्ट, दोनों ही पहलुओं पर समान ध्यान दे पायेगें। इसके लिए हमें हमेशा आपकी रपटों, संघर्ष सूचनाओं, प्रतिक्रियाओं, सुझावों की सख्त जरूरत रहेगी।

हमने *श्रमजीवी* की शुरूआत न्यूनतम मजदूरी से की है जो देश भर के असंगठित मजदूरों और उनके संगठनों के

लिए प्राथमिक महत्व का है।

यहाँ नवीनतम आर्थिक सर्वेक्षण, बजट व न्यूनतम मजदूरी पर अभी तक उपलब्ध जानकारियों के आधार पर न्यूनतम मजदूरी के मुद्दे को एक सही परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयास है। व्यापक पैमाने पर विभिन्न अध्ययनों व संदर्भों की मदद से हमें यह स्थापित करने में मदद मिली है कि कौन लोग इस क्षेत्र में सबसे ज्यादा शोषित हैं, न्यायसंगत न्यूनतम मजदूरी का व्यापक प्रभाव क्या होगा और इसे लागू करवाने के लिए क्या रास्ते अख्तियार किये जाने चाहिए। इस संदर्भ में यह बात बहुत साफ तौर पर उभर कर आती है कि अगर न्यूनतम मजदूरी प्रभावी तरीके से लागू की जाये तो असंगठित क्षेत्र, अनौपचारिक तथा अनियमित मजदूरों तथा महिला मजदूरों की स्थिति में काफी बेहतरी लायी जा सकती है। न्यूनतम मजदूरी का एक व्यापक सामाजिक व राजनैतिक महत्व है । साथ ही यह श्रम बाजार को भी सीधा प्रभावित करता है।

विभिन्न अध्ययनों से यह बात भी उभरती है कि आज न्यूनतम मजदूरी तय करने के फार्मूले में एक आपराधिक मनमानापन है। कोई भी ऐसा फार्मूला आज की सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं के मानदण्डों से काटकर नही देखा जा सकता।

साथ ही साथ यह उचित मौका है न्यूनतम मजदूरी के अन्य सम्भावित फार्मूलों पर चर्चा का तथा इस मुद्दे पर आने वाले समय में किये जाने वाले अभियानों पर भी गौर करने का। अगर एक बार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के मानदण्ड तय हो जाते हैं तो इसे आगे बढ़ाने की दिशा में और लागू करवाने की मशीनरी पर चर्चा करना आसान हो जायेगा। इसीलिए हमने अमल के मुद्दे पर यहाँ ज्यादा चर्चा नहीं की है।

आज के समय में यह ज्यादा जरूरी है कि न्यूनतम मजदूरी पर चर्चा को समाज के अन्य व्यापक प्रयासों के साथ जोड़ा जाय ताकि रोजगार की स्थिति बेहतर हो सके और ज्यादा से ज्यादा परिवार गरीबी के दलदल से बाहर निकाले जा सकें।

हमारी योजना यह है कि *श्रमजीवी* को फिलहाल त्रैमासिक पत्रिका के रूप में नियमित रूप से निकाला जाए और हिंदी में इसे श्रम और आर्थिक विषयों से सम्बन्धित विचार विमर्श का एक जीवंत, पारस्परिक, और लोकतांत्रिक मंच बनाया जाए। हिंदी ज़बान में अपनी तरह के इस पहले प्रयोग में आप सबकी भागीदारी के बिना यह कोशिश अधूरी रहेगी।

जे जॉन, मुकुल शर्मा

विशेष रपट

न्यूनतम मजदूरी: गरीबी, बेरोजगारी, तंगहाली के खिलाफ एक औजार

जे जॉन, मुकुल शर्मा

भारत में न्यूनतम मजदूरी का इतिहास और उस पर मौजूदा अमल किसी भी तरह से संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। सरकारी और निजी, दोनों ही क्षेत्रों में न्यूनतम मजदूरी के सिद्धांत की खुली अवहेलना देखी जा सकती है। असंगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी के अमल को लागू करवा पाना और भी मुश्किल है। इस हताशा के बावजूद इस मुद्दे को लेकर एकजुटता के प्रयास भी कम नहीं हैं। जे जॉन और मुकुल शर्मा न्यूनतम मजदूरी की समस्या और संघर्ष पर एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं।

दिल्ली, 1 मई, 1997 : असंगठित क्षेत्र के मजदूर यूनियनों के नवगठित महासंघ नेशनल सेन्टर फॉर लेबर (एन सी एल) ने दिल्ली में न्यूनतम मजदूरी के मुद्दे पर राष्ट्रीय अभियान शुरू किया।

कोच्चिन, अप्रैल, 1997 : सेन्टर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियंस (सी०आई०टी०यू०) ने अपने नौवें अखिल भारतीय सम्मेलन में न्यूनतम मजदूरी नीति के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया और इस मुद्दे पर अभियान छेड़ने का निर्णय लिया।

दिल्ली, नवंम्बर, 1996 : भारतीय श्रम सम्मेलन में न्यूनतम मजदूरी पर विचार किया गया।

ये तारीखें बताती हैं कि देश भर के मजदूर संगठन और ट्रेड यूनियनें मजदूरी के मुद्दे पर सक्रिय हो रहे हैं। आखिर इस सक्रियता के क्या कारण हैं? ये संगठन न्यूनतम मजदूरी को कैसे परिभाषित करते हैं? न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पिछले 50 सालों से देश में प्रभावी है, तो फिर आज के सवाल क्या हैं? इस अधिनियम पर अमल कितना प्रभावी है? देश के विभिन्न भागों में न्यूनतम मजदूरी की दरें क्या हैं और न्यूनतम मजदूरी पर राष्ट्रीय अभियान कितना प्रासंगिक है? ऐसे कई सवाल हैं जिन पर चर्चा अपरिहार्य हो गई है।

आर्थिक नीतियाँ, ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम और बजट

" यदि कोई बजट भारत को दुनिया से जोड़ सकता है, तो वह यही है," यह टिप्पणी इकानॉमिक टाइम्स ने वित्त मंत्री पी० चिदम्बरम् के बजट 1997-98 पर की थी। और, देश के एक प्रमुख उद्योगपति राहुल बजाज ने बेहद खुशी जाहिर करते हुए यह प्रतिक्रिया जाहिर की थी कि ' यह बजट हमारी आशाओं से भी ज्यादा है। वास्तव में यह अविश्वसनीय-सा है। मेरा मानना

है कि यह एक उल्लेखनीय बजट है '।

लेकिन कॉरपोरेट समूहों, अमीरों, ताकतवरों, और मध्यवर्ग को उन्माद से भर देने वाले बजट में देश के 85 करोड़ लोगों और उनमें भी भयावह गरीबी में जीने वाले 33 करोड़ लोगों के लिए क्या था ? कुछ भी नहीं ! बजट का सीधा संदेश था कि चाहे कुछ भी हो, भारत भूमण्डलीकरण और ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम के रास्ते पर मजबूती से आगे बढ़ने वाला है। जहाँ बजट में उद्योगपतियों, अनिवासी भारतीयों, निर्यातकों और मध्यवर्ग के लिए करों में भारी रियायतें थी, वहीं मजदूरों को एकमात्र यह लाभ मिला है कि उनके भविष्य निधि के योगदान में 2 प्रतिशत और ग्रैच्युटी सीमा में 1 लाख से 2.5 लाख की वृद्धि कर दी गई थी।

वास्तव में बजट में ऐसे कई प्रावधान हैं जिनका शहरी और ग्रामीण गरीबों के रोजगार और मजदूरी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। मसलन लघु उद्योगों के लिए आरक्षित उत्पादों की सूची में 14 चीजें अनारक्षित करना। इनमें चावल और दाल मिल, बिस्कुट, आइसक्रीम, मोटरवाहनों के उपकरण आदि शामिल हैं। लघु उद्योगों के लिए आरक्षण का मुख्य उद्देश्य था रोजगार के अवसर बढ़ाना। लघु उद्योग भारती का अनुमान है कि देश में 20 लाख 70 हजार छोटी औद्योगिक इकाइयाँ हैं। इनमें 2 .5 करोड़ मजदूर हैं। इनके लिए 991 उत्पाद आरक्षित हैं और कोई 3,75.00 करोड़ रूपये का सामान उत्पादित होता है। इस क्षेत्र में बड़े व्यापारियों की घुसपैठ से निश्चय ही छोटी औद्योगिक इकाइयाँ बन्द होंगी और काफी मजदूर बेरोजगार होंगे। बजट प्रावधानों के अनुसार 5 लाख रूपये से ज्यादा पूँजी निवेशवाली छोटी औद्योगिक इकाइयों को ही 60 प्रतिशत कर्ज दिये जायेंगें। यही नहीं, वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में यह भी कहा कि सरकार जनवरी 1997 में प्रस्तुत आबिद हुसैन कमेटी रिपोर्ट की सिफारिशों पर भी सहानुभूतिपूर्वक विचार कर रही है। याद रहे कि आबिद हुसैन कमेटी ने लघु उद्योगों के लिए आरक्षण और विदेशी इक्विटी सीमा पूरी तरह समाप्त करने की सिफारिश की है।

कॉरपोरेट समूहों, अमीरों, ताकतवरों, और मध्यवर्ग को उन्माद से भर देने वाले बजट में देश के 85 करोड़ लोगों और उनमें भी भयावह गरीबी में जीने वाले 33 करोड़ लोगों के लिए क्या था ? कुछ भी नहीं ! बजट का सीधा संदेश था कि चाहे कुछ भी हो, भारत भूमण्डलीकरण और ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम के रास्ते पर मजबूती से आगे बढ़ने वाला है।

इसी तरह कृषि क्षेत्र में कई नियंत्रण समाप्त करने का निर्णय किया गया जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय निवेशकों का प्रवेश आसान हो सके। इससे गाँवों में गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रभावित होंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण के नियमन के लिए बनाए गये कई कानून समाप्त कर दिये गये । ओटी और गैंठी हुई रूई, गैंठे कच्चे जूट और जूट उत्पादों के व्यापार में कई रियायतें दी गई । इससे हथकरघा क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने की बात तो दूर, रोजगार का वर्तमान स्तर कायम रखने में भी मुश्किलें आएँगी।

नौवें दशक में ढाँचागत समायोजन कार्यक्रमों पर अमल के अब तक के सरकारी रिकार्डों के आधार पर यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि औद्योगिक और कृषि क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने के लिए कोई नई पहल होगी। 1997 के आर्थिक सर्वेक्षण में अर्थव्यवस्था की विकास दर बढ़ने की संभावना के बावजूद लगभग हर क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर स्थिर है। सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों की बंदी, निजी क्षेत्र के पुनर्गठन और निजीकरण के कारण संगठित क्षेत्र के मजदूर सड़कों पर आ रहे हैं। जिन चीजों का उत्पादन संगठित औद्योगिक क्षेत्रों में होता था, वे अब असंगठित घरेलू क्षेत्रों में स्थानान्तरित हो रहे हैं, जिनमें मजदूरों का भयंकर शोषण होता है। इज़ारेदार औद्योगिक घराने बड़े पैमाने पर ठेके-दर-ठेके के जरिये काम करा रहे हैं जहाँ मजदूरों के अधिकारों की आसानी से अवहेलना हो सकती है।

अनुमान है कि 1991-96 के दौरान खाद्यान्नों और कृषि की सालाना विकास दर क्रमशः केवल 1.5 प्रतिशत और 2 प्रतिशत रही है। यह जनसंख्या की विकास दर 2 .1 प्रतिशत से भी कम है। कृषि मजदूरी के आधिकारिक आँकड़े बताते हैं कि 1994 से वास्तविक मजदूरी में कमी आई है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में कटौती की गई है। इन कारणों से गाँव के गरीबों के लिए प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता में भारी गिरावट आई है। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लाखों भारतीयों , जिनकी संख्या में 1991 के बाद 3 करोड़ की वृद्धि हुई है, के स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, पीने के साफ पानी और अन्य सामाजिक सेवाओं में सुविधायें पहले से कमतर और खराब हुई हैं। हाल में केन्द्रीय श्रम सचिव ने एक इंटरव्यू में स्वीकार किया कि देश के 300 जिलों

में बाल मजदूरी के लिए विशेष स्कूल खोलने के लिए सरकार को 2000 करोड़ रूपयों की जरूरत है जबकि 1997-98 बजट में प्राथमिक शिक्षा और पोषण कार्यक्रमों के लिए क्रमशः केवल 1582 और 960 करोड़ रूपयों का प्रावधान किया गया।

जनवरी 97 में आई पाँचवे वेतन आयोग की रिपोर्ट हमारी सरकार की रोजगार और मजदूरी नीति का एक और आयाम सामने लाती है। आयोग ने केन्द्रीय कर्मचारी का न्यूनतम वेतन 2440 रूपये तय किया है जबकि अधिकतम वेतन इससे दस गुना से भी ज्यादा 26,000 रूपये है। आयोग ने अगले 10 सालों में कर्मचारियों की संख्या में 30 प्रतिशत कटौती, 3 .5 लाख रिक्त पदों की समाप्ति और निचली श्रेणी के रोजगार पर रोक की सिफारिशें कीं । यही नहीं, आयोग ने निम्न श्रेणी की सेवाओं के निजीकरण का भी प्रस्ताव किया ।

अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र, जहाँ देश के 92-93 प्रतिशत श्रमजीवी संलग्न हैं, की प्रकृति और चरित्र में बुनियादी बदलाव आ रहा है। यह स्थायी से अस्थायी, ठेका, दैनिक रोजगार ; टाइम रेट से पीस रेट, औद्योगिक इकाइयों से घरेलू उत्पादन, पुरुष मजदूरों के बरक्स महिला मजदूरों को प्रमुखता, नियंत्रित से अनियंत्रित स्थितियों और यूनियनबंद से असंगठित श्रमिकों में बदल रहा है।

अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र, जहाँ देश के 92-93 प्रतिशत श्रमजीवी संलग्न हैं, की प्रकृति और चरित्र में बुनियादी बदलाव आ रहा है। यह स्थायी से अस्थायी, ठेका, दैनिक रोजगार, टाइम रेट से पीस रेट, औद्योगिक इकाइयों से घरेलू उत्पादन, पुरुष मजदूरों के बरक्स महिला मजदूरों को प्रमुखता, नियंत्रित से अनियंत्रित स्थितियों और यूनियनबंद से असंगठित श्रमिकों में बदल रहा है। यह मजदूर बेहद असुरक्षित है और पारंपरिक अर्थों में सामूहिक सौदेबाजी करने और मजदूरी या काम की अन्य स्थितियाँ तय करने में अब समर्थ नही है। इसके साथ ही श्रम बाजार, विशेषकर ग्रामीण श्रम बाजार में, वन, मछली, कृषि, हथकरघा जैसे पारंपरिक पेशों में लगे मजदूरों का प्रवेश बढ़ रहा है। वजह यह है कि इन पेशेवर समूहों के संपत्ति के अधिकार छिन रहे हैं और यहाँ भी बाजार की अर्थव्यवस्था हावी हो रही है। एक और मसला है: श्रम विषयों के जानकार बताते हैं कि मजदूर क्षेत्रीय विषमता, दक्षता और शिक्षा वगैरह में अन्तर के कारण ही नहीं, जाति और मजहब और भाषाओं की भिन्नता की वजह से भी बँटे हुए हैं। यह दर्ज़ करना भी जरूरी है कि मजदूरों के जीवन-यापन के लिए केवल मजदूरी ही पर्याप्त नहीं होती है।

इस सबके बावजूद हालत यह है कि देश के मजदूरों में दिहाड़ी या किसी-न-किसी तरह की मजदूरी पर काम करने वाला समूह तेजी से बढ़ रहा है और एक प्रमुख समूह बन रहा है। जैसे-जैसे यह समूह बढ़ता है, मजदूरों की आय की गणना और उनके अस्तित्व के लिए नकद मजदूरी एक प्रमुख पैमाना बन जाती है। यही वजह है कि रोजगार और इस रोजगार के लिए मजदूरी जिस पर मजदूर और उसके परिवार का जीवन-यापन निर्भर है, इस दौर में विचार-विमर्श और आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण बिन्दु बन गये हैं।

42 वर्षीया रत्ना माझी पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जिले में मछली छाँटने और सुखाने का काम करती है। उसकी एक दिन की आय 10 रूपये है और वह भी साल के केवल छः महीनों के लिए । मालिकों के एसोसियेशन ने 20 किलोग्राम के वज़न वाली एक टोकरी ताजी मछली छाँटने के लिए 50 पैसे की दर निर्धारित की है। नेशनल फिशवर्कर्स फोरम के अध्यक्ष हरेकृष्ण देवनाथ का कहना है कि ' दिन भर में 20 टोकरी से ज्यादा की छँटाई नामुमकिन है। अहमदाबाद में अपने -अपने घरों में काम करने वाली महिलाओं पर किये गये 'सेवा ' के सर्वेक्षणों से पता चलता है कि 1995 में इन महिलाओं की रोजाना आय औसतन 6 से 22 रूपये के बीच थी। रत्ना माझी और अहमदाबाद की महिलाएँ दोनों पीस रेट पर काम करती हैं। उनकी आय गुजर-बसर के लिए बेहद अपर्याप्त है। वे जीवन निर्वाह के निर्धारित स्तर से नीचे जीती हैं।

उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले की एक दवा कम्पनी में काम करने वाली 36 वर्षीय पूनम की भी यही हालत है। उसकी एक दिन की मजदूरी 17 रूपये है। इस तरह से मजदूरी करने वाले इस देश में लाखों लोग हैं। आखिर उनकी मजदूरी इतनी कम क्यों है? इन मजदूरों की आय बढ़ाने के क्या साधन उपलब्ध हैं?

यह स्पष्ट है कि मजदूरी और बेरोजगारी एक दूसरे से जुड़े हैं। 1992 में 3.67 करोड़ या इससे कुछ ज्यादा ही लोग देश के रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत थे। इसका मतलब यह है कि एक विशाल आरक्षित श्रम काम की खोज में है। इनमें केवल अकुशल और अशिक्षित मजदूर ही नहीं हैं, बल्कि इनकी एक बड़ी संख्या बेहद कुशल और शिक्षित मजदूरों की भी है। मालिक कम से कम भुगतान करने के बावजूद काफी संख्या में मजदूर हासिल कर सकते हैं। दूसरी तरफ, रोजगार में वृद्धि दर केवल 2.2 प्रतिशत है, यानी यह दर सभी बेरोजगारों को खपाने में असमर्थ है। माँग और पूर्ति के ये नियम मजदूरी की दर नीचे रखते हैं।

सिद्धान्ततः मजदूर तभी काम कर पायेगा, जब वह जिन्दा रहेगा। इसलिए मजदूरी की दरें एक सीमा के बाद नीचे नहीं जा सकती हैं। पर वास्तव में स्थितियाँ इसकी उलटी हैं। देश की 30 प्रतिशत आबादी का गरीबी की रेखा के नीचे जीना और रहना इस सिद्धान्त को गलत प्रमाणित करता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि मालिक मजदूरों की जरूरत से ज्यादा उपलब्धता और मजदूर संगठनों के अभाव में मजदूरों को न्यूनतम पोषण जरूरतों के आधार पर मजदूरी नहीं देंगे।

न ही बाजार की ताकतों के खुले खेल से गरीबी के स्तर की मजदूरी रोकी जा सकती है। बाजार की ताकतें मजदूरी का स्तर निम्न बनाए रखने में मदद ही करती हैं।

एक उम्दा श्रम कानून

अपनी कई अन्तर्निहित कमजोरियों के बावजूद न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 भारत के श्रम कानूनों में उल्लेखनीय है और इसकी क्षमताएँ पूरी तरह आजमाई जानी बाकी हैं। शोषण करने वाले उद्योगों में मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी तय करने और इसे संशोधित करने तथा बढ़ाने के उद्देश्य से बनाया गया यह अधिनियम बाद के सालों में देश की भंयकर गरीबी की समस्या से जूझने का भी हथियार माना गया।

इस अधिनियम के अस्तित्व में आने के पीछे अन्दरूनी और बाहरी, दोनों कारण थे। 1918 और 1944 के बीच भारत में मजदूरों की संख्या में काफी वृद्धि हुई थी। कारखानों और इनमें काम करने वालों की संख्या क्रमशः 3436 और 1,122, 922 से बढ़कर 14071 और 2,522,753 हो गई थी। यह उल्लेखनीय है कि पहले और दूसरे विश्व युद्धों के बीच और दूसरे विश्व युद्ध के बाद देश भर में और विशेष रूप से प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में व्यापक औद्योगिक अशांति देखने में आई थी। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि मालिकों ने युद्ध के बाद की मंदी का मुकाबला करने के लिए मजदूरों की मजदूरी में काफी कटौती कर दी थी। मसलन, अहमदाबाद मिल ओनर्स एसोसिएशन ने 1 अप्रैल 1923 से मजदूरी में 20 प्रतिशत कटौती की घोषणा की थी। मिल ओनर्स एसोसिएशन, बम्बई ने अपने सदस्यों को मजदूरी में कटौती के लिए खुला छोड़ दिया था। मजदूरों की लम्बी हड़तालें हुईं। इस सारी हलचल के बावजूद भी उन्हें पहले से कम मजदूरी स्वीकार करनी पड़ी। जब प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में यह हुआ तो देश भर में फैले नियोजकों ने अपने आप मजदूरी में कटौती शुरू कर दी और यहाँ मजदूरों की स्थितियाँ और खराब हो गईं।

वर्ष	हड़तालों और लॉक आउटों की संख्या	शामिल मजदूरों की संख्या	श्रम दिवसों की हानि
1929	396	600,351	6984,426
1925	134	270,423	12,578,129
1928	203	506,851	31,647,404
1937	379	647,801	8,982,000
1942	694	772,653	5,779,965

1929 में न्यूनतम मजदूरी पर विचार के लिए रॉयल कमीशन ऑन लेबर गठित हुआ जिसने 1931 में अपनी रिपोर्ट दी। 1938 में केन्द्रीय विधान सभा ने ' पर्याप्त मजदूरी ' देने का आग्रह किया। पाँचवे श्रम सम्मेलन (1943) और श्रम समिति के चौथे सत्र (1944) में इस मुद्दे पर विचार किया गया।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 में केन्द्र और राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे अधिनियम में अनूसूचित रोजगारों के लिए न्यूनतम मजदूरी तय करें। कृषि मजदूरों के लिए बनाया गया राष्ट्रीय आयोग (1976) शोषण करने वाले उद्योगों के लिए अधिनियम के संदर्भ में तीन चुनौतियों का जिक्र करता है: उद्योगों की पहचान, अमल और सजा । आयोग के अनुसार कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी के लिए ये तीनों स्थितियाँ मुश्किल हैं। आयोग सुझाव देता है कि कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी नीति राज्य के रोजगार बढ़ाने वाले अन्य कार्यक्रमों के साथ जोड़ी जानी चाहिए। इस तरह ग्रामीण इलाकों में न्यूनतम मजदूरी एक ओर गरीबी को खत्म करने का भरोसा दिलाती है, तो दूसरी ओर मालिकों द्वारा शोषण खत्म करने का विश्वास पैदा करती है।

यदि हम देश में न्यूनतम मजदूरी पर विवाद का विकास देखें तो इसका साफ -साफ जोर अधिनियम के सार्वजनिक अमल और गरीबी और बेरोजगारी के खिलाफ एक औजार के रूप में इसके इस्तेमाल पर है।

1928 में अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आइ०एल०ओ०) की कन्वेंशन संख्या 26 का भी न्यूनतम मजदूरी विवाद पर काफी असर है। इस कन्वेंशन में उन मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी मशीनरी की बात की गई थी जहाँ सामूहिक सौदेबाजी या किसी अन्य प्रकार से मजदूरी के निर्धारण का कोई नियम-कानून नहीं है, या जहाँ मजदूरी बेहद कम है। 1951 में अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने कृषि में न्यूनतम मजदूरी तय करने की मशीनरी सम्बन्धी कन्वेंशन 99 और 1970 में विकासशील देशों के विशेष संदर्भ में न्यूनतम मजदूरी तय करने सम्बन्धी कन्वेंशन 131 स्वीकार किया। संगठन ने कन्वेंशन संख्या 131 की सिफारिशों में न्यूनतम मजदूरी और गरीबी के अंतर्सम्बंधों के बारे में कहा कि ' न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण गरीबी हटाने और सभी मजदूरों और उनके परिवारों की जरूरतें पूरी करने की नीति का एक अंग होना चाहिए '।

> **न्यूनतम मजदूरी पर होने वाली चर्चाओं में गरीबी, रोजगार और न्यूनतम मजदूरी के बीच सम्बन्ध बेहद निर्णायक हैं।**

गरीबी, रोजगार और न्यूनतम मजदूरी

न्यूनतम मजदूरी पर होने वाली चर्चाओं में गरीबी, रोजगार और न्यूनतम मजदूरी के बीच सम्बन्ध बेहद निर्णायक हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन रोजगार के तीन अलग पहलुओं की चर्चा करते है। ये पहलू हैं: आय, उत्पादन और मान्यता। उनका कहना है कि गरीबी वास्तव में तकनीक और उत्पादकता, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व और उत्पादन और उसके वितरण की सामाजिक व्यवस्था का मिला -जुला परिणाम है। आखिर लोग अपने काम के लिए इतनी कम मजदूरी क्यों स्वीकार करते हैं ? क्यों आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों की गरीबी की समस्या सब्सिडी के जरिये हल की जा सकती है? अमर्त्य सेन का कहना है कि 'रोजगार आय पैदा करने और बाँटने का एक महत्त्वपूर्ण जरिया है। साथ ही यह आत्मसम्मान और दूसरों द्वारा आपके सम्मान से जुड़ा है'। न्यूनतम मजदूरी इस सवाल का जवाब इस तरह से देने की कोशिश करती है कि श्रम बाजार में आ रहे लोगों के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर हैं या नही; मजदूरों की उत्पादक गतिविधियों के लिए की जाने वाली मजदूरी मजदूर और उसके परिवार के जीवन के लिए पर्याप्त है या नहीं; मजदूरी आय के वितरण का रास्ता बनाती है या नहीं ; और मजदूरी मजदूरों को उनका हक देती है या नहीं।

एक मजदूर की मजदूरी उसके और उसके बच्चों की बुनियादी जरूरतों, जैसे खाना, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य सुविधा, शिक्षा के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। गरीबी के स्तर की मजदूरी-मजदूर के जीवन के अधिकार की अवहेलना है। इससे मजदूर की क्षमता और उत्पादकता गिरेगी। यह बच्चों की अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं और पोषणयुक्त आहार के अधिकार की भी अवमानना होगी। इसका हमारी आने वाली पीढ़ियों और सामाजिक ताने-बाने पर प्रतिकूल असर पड़ेगा।

"जरूरत पर आधारित न्यूनतम मजदूरी के चुनाव के मामले में हमारे कानून स्पष्ट हैं। न्यायाधिकरण न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण में अच्छी पहल के पक्ष में है ", यह कथन बंगलूर के लॉ कॉलेज के प्रोफेसर बाबू मैथ्यू का है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 ने न्यूनतम मजदूरी की अवधारणा की व्याख्या नहीं की है। न्यूनतम मजदूरी से सम्बन्धित उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की व्याख्या से पता चलता है कि न्यायालय दो चीजों को प्रमुखता देता है और उन्हें स्वीकार भी करता है। पहली, न्यायसंगत मजदूरी पर समिति के निष्कर्ष (1949) और दूसरी, भारतीय श्रम सम्मेलन के 15वें सत्र के निर्णय (1957)। 'न्यूनतम मजदूरी ', ' न्यायसंगत मजदूरी ' और ' जीवन यापन की मजदूरी ' के बीच भेद करते हुए न्यायसंगत मजदूरी समिति ने साफ किया कि न्यूनतम मजदूरी गरीबी के स्तर की मजदूरी नहीं है। समिति के अनुसार न्यूनतम मजदूरी से केवल मजदूर का गुजर-बसर ही नहीं होना चाहिए। इस के अनुसार न्यूनतम मजदूरी में शिक्षा और चिकित्सा संबंधी जरूरतों और सुविधाओं के लिए भी प्रावधान होना चाहिए।

भारतीय श्रम सम्मेलन के 15वें सत्र में सरकार, मालिक और मजदूर संगठन की त्रिपक्षीय समिति ने एकमत से न्यूनतम मजदूरी तय करने के कुछ मानदंड बनाए। ये हैं: 1. प्रति मजदूर तीन सदस्यों के परिवार की गणना। 2. सामान्य काम काज करने वाले वयस्क मजदूर के लिए रोजाना 2700 कैलोरी के खाद्य की जरूरत। 3. हर व्यक्ति के लिए हर साल 18 गज कपड़े की जरूरत। 4. सरकारी आवास योजनाओं के तहत आवास। और, 5. इन सभी खर्चों का 20 प्रतिशत ईंधन, रोशनी और अन्य जरूरतों के लिए। उच्चतम न्यायालय ने रेप्टकोस ब्रेट एंड कम्पनी लिमिटेड के मजदूरों और प्रबंधकों के मामले में न्यूनतम मजदूरी के मानदंडों में एक नया और छठा बिन्दु जोड़ा। यह था, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य की जरूरत, न्यूनतम मनोरंजन, त्योहार, बुढ़ापा, शादी, आदि जरूरतों के लिए कुल न्यूनतम मजदूरी का 25 प्रतिशत सुरक्षित रखा जाए। उच्चतम न्यायालय ने यह भी बार -बार साफ किया है कि न्यूनतम मजदूरी तय करने में मालिक की भुगतान करने की क्षमता को आधार नही बनाना चाहिए और मजदूरी न दे पाने वाले मालिक को मालिक बने रहने का कोई अधिकार नहीं है।

बहस जारी है

यह बहस अभी खत्म नही हुई है। एक महत्त्वपूर्ण विवाद यह है कि खाने की जरूरी चीजें क्या -क्या हों। प्रोफेसर बाबू मैथ्यू का कहना है कि ' मजदूरी बोर्डों ओर वेतन आयोगों ने पोषण के जरूरी तत्वों में निरन्तर कमी लाकर, खाद्य पदार्थों की सूची में कटौती करके न्यूनतम मजदूरी कम की है '।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम इस बात को भी साफ तौर पर स्वीकार करता है कि शोषण करने वाले संस्थानों और क्षेत्रों में बाजार की ताकतों या माँग और पूर्ति के नियमों को मजदूरी निर्धारित करने की अनुमति नही दी जा सकती है। इसे स्वीकार करते हुए प्रोफेसर रुद्र दत्त कहते हैं कि ' इस तरह से न्यूनतम मजदूरी की मौजूदा स्थितियों को सुधारा जा सकता हैं'। वह केरल और पंजाब का उदाहरण देते हैं, जहाँ न्यूनतम मजदूरी की दरें ऊँची हैं। केरल में मजदूरों ने अपने संगठनों की ताकत के जरिये मजदूरी हासिल की है। यहाँ औद्योगिक और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के मजदूर काफी संगठित हैं और मजदूरी की मांग कर सकते हैं। पर केरल के मजदूरों की स्थिति विचित्र है क्योंकि उनकी प्रति दिन की आय ज्यादा है, लेकिन सालाना आय कम है। चूँकि रोजगार पूरे वर्ष उपलब्ध नहीं है, इसलिए उनकी सालाना आय गिर गई है।

इसके विपरीत पंजाब में मजदूरों का संघर्ष अपेक्षाकृत कम है। फिर भी न्यूनतम मजदूरी बढ़ी है। इसकी वजह यह है कि पंजाब की विकास दर में, विशेष रूप से कृषि के विकास में, निरंतर वृद्धि हुई है। शायद इसीलिए प्रोफेसर दत्त सावधान करते हैं कि ' न्यूनतम मजदूरी को रोजगार से अलग करके नही देखा जा सकता है '।

जिन राज्यों में मजदूरों के संगठन और आर्थिक विकास दोनों अनुपस्थित हैं, वहां मजदूरी बेहद नीचे बनी रहेगी। साथ ही, विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरी में अंतर की वजह से रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरी नीचे जाती है और इसी कारण मजदूर बेहद अमानवीय स्थितियों में परदेस जाकर काम करते हैं।

न्यूनतम मजदूरी पर सरकारी कार्यवाहियों का लेखा जोखा

1931 रॉयल कमीशन ऑन लेबर की रिपोर्ट (1929)

जिन क्षेत्रों में मजदूरी सबसे कम है और सामूहिक सौदेबाजी की कोई स्थिति नही है, वहाँ न्यूनतम मजदूरी तय करने के सवाल पर विचार किया गया। इसने बीड़ी बनाने, ऊन की सफाई, माइका उद्योग, चपड़ा उद्योग, चमड़ा उद्योग आदि में न्यूनतम मजदूरी की अनुशंसा की। चाय बागानों के लिए वैधानिक वेतन बोर्ड की स्थापना की भी अनुशंसा की गई।

1938 केन्द्रीय विधान सभा में प्रस्ताव

इस प्रस्ताव में सरकार से सुरक्षा और सब्सिडी पाने वाले उद्योगों से अपने मजदूरों को 'पर्याप्त मजूदरी ' देने और उचित व्यवहार करने की अपील की गई। यहाँ पर्याप्त मजदूरी परिभाषित करते हुए जोर दिया गया कि मजदूरी ऐसी हो जो अस्तित्व के लिए जरूरी सभी जरूरतों, जैसे भोजन, कपड़ा , आवास, शिक्षा आदि की पूर्ति करती हो और उद्योग की जरूरतों के व्यावहारिक पहलुओं का भी ध्यान रखती हो।

1943 भारतीय श्रम सम्मेलन-पाँचवा सत्र

न्यूनतम मजदूरी पर सामाजिक सुरक्षा के संदर्भ में चर्चा की गई।

1944 स्थायी श्रम समिति - चौथा सत्र

यहाँ इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि अलग-अलग इलाकों के लिए न्यूनतम मजदूरी हो।

1944 रेगे समिति की रिपोर्ट

समिति द्वारा किये गये सर्वेक्षणों से जाहिर हुआ कि ज्यादातर भारतीय उद्योगों में मूलभूत मजदूरी का स्तर काफी कम है। भारतीय उद्योगों द्वारा इसमें संशोधन करने या इन्हें ऊपर उठाने के लिए कोई भी कदम नही उठाया गया है।

1946 केन्द्रीय वेतन आयोग

पूरे भारत में समान वेतन मान, मँहगाई भत्ता और बड़े शहरों और औद्योगिक केन्द्रों में आवास भत्ता व क्षतिपूर्ति भत्ता की अनुशंसा की गई। यह भी अनुशंसा की गई कि सरकार को गरीबी की रेखा पर रहने वाले मजदूरों के लिए निर्वाह मजदूरी का प्रावधान लागू करवाने की कोशिश करनी चाहिए। आयोग के अनुसार किसी भी व्यक्ति को किसी भी स्थिति में निर्वाह मजदूरी से कम मजदूरी नहीं मिलनी चाहिए।

1946 न्यूनतम मजदूरी बिल भारतीय विधान सभा में 11 फरवरी को पेश किया गया।

1947 बिल मार्च में प्रवर समिति के सुपुर्द किया गया।

1947 प्रथम केन्द्रीय वेतन आयोग

"चर्चा की शुरूआत अकुशल मजदूरों को दी जाने वाली मूलभूत मजदूरी के निर्धारण से होनी चाहिए। हमें इस निर्णय पर पहुँचना ही होगा कि इस श्रम का बाजार मूल्य जो भी हो, सरकार द्वारा कोई न्यूनतम मजदूरी मानक तय किया जाना चाहिए" आयोग ने आगे कहा कि न्यूनतम मजदूरी का इस्तेमाल वितरण में असमानता सुधारने के लिए किया जा सकता है लेकिन यह देश

की कुल उत्पादन क्षमता या राष्ट्रीय आय की अवहेलना करके नही किया जा सकता।

1948 प्रवर समिति ने जनवरी 28 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

1948 न्यूनतम मजदूरी कानून भारतीय विधान सभा द्वारा 15 मार्च को स्वीकार किया गया।

इसके अनुसार उपयुक्त सरकार को अनुच्छेद में दिये गये रोजगारों के लिए न्यूनतम मजदूरी दर तय करनी होगी। केन्द्रीय सरकार के तहत आने वाले नियोजन जैसे रेलवे प्रशासन, खनन, तेल क्षेत्र तथा अन्य कोई संस्थान जिसे केन्द्र के किसी कानून के तहत स्थापित किया गया हो, इन सबमें न्यूनतम मजदूरी दर निर्धारण के लिए उपयुक्त सरकार केन्द्र सरकार होगी। उपयुक्त सरकार को न्यूनतम मजदूरी दर की समीक्षा व संशोधन कुछ-कुछ समय के अन्तराल पर करते रहना चाहिए और यह अन्तराल पाँच साल से ज्यादा नहीं होना चाहिए । हर मालिक द्वारा अनुच्छेद में शामिल रोजगार क्षेत्रों में काम करने वाले अपने कर्मचारी को इस कानून के तहत तय की गई न्यूनतम मजदूरी देना आवश्यक है।

1948 केन्द्रीय सरकार का ओद्योगिक नीति पर प्रस्ताव

प्रस्ताव ने कड़ी मेहनत वाले उद्योगों में वैधानिक न्यूनतम मजदूरी की दर तय करने के अपने इरादे पर जोर दिया। संगठित उद्योगों में उचित मजदूरी समझौता आगे बढ़ाने पर भी जोर दिया।

1949 न्यायसंगत मजदूरी समिति

समिति ने न्यूनतम मजदूरी, न्यायसंगत मजदूरी व निर्वाह मजदूरी में अन्तर किया। न्यूनतम मजदूरी केवल भरण पोषण के लिए ही नहीं होना चाहिए बल्कि मजदूर की दक्षता को बनाये रखने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की सुविधाएँ भी इसमें शामिल होनी चाहिए। यह वह न्यूनतम स्तर है जिसके नीचे मजदूरी दर किसी भी हालत में नहीं जानी चाहिए। निर्वाह मजदूरी एक ऐसा जीवन स्तर इंगित करती है जो केवल शारीरिक रूप से अपने आप को बनाए रखने के लिए ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य व शालीनता बरकरार रखने, जीवन में कुछ आरामदायक सुविधाएँ तथा जीवन में होने वाली दुर्घटनाओं का बीमा भी मुहैया कराती हो। न्यायसंगत मजदूरी का न्यूनतम स्तर स्पष्टत: न्यूनतम होगा लेकिन इसका ऊपरी स्तर उद्योग की मजदूरी देने की क्षमता से तय होगा। इस समिति के अनुसार मजदूरी का निर्धारण निम्न घटकों पर निर्भर करता है:

1. श्रम की उत्पादकता
2. मजदूरी की तात्कालिक दर
3. राष्ट्रीय आय का स्तर व उसका वितरण
4. देश की अर्थव्यवस्था में उद्योग का स्थान।

1950 न्यायसंगत मजदूरी बिल अस्थायी संसद में अगस्त में पेश किया गया।

यह बिल अस्थायी संसद के भंग होने के साथ ही खत्म हो गया।

1951 प्रथम पंचवर्षीय योजना (51-56)

इसने सुझाव दिया कि औद्योगिक सम्बन्ध कार्यप्रणाली में प्रस्तावित त्रिपक्षीय मशीनरी स्पष्ट और व्यावहारिक तरीके से ऐसे 'मापदंड' और 'तौर-तरीके' विकसित करे जिससे वेतन बोर्डों या पंचाटों को मजदूरों के विभिन्न समूहों की मजदूरी और उनके दावों, उद्योग के अन्य किरदारों और पूरे समुदाय के सवालों को सुलझाने में मदद मिल सके।

1956 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने यह महसूस किया कि न्यूनतम मजदूरी से सम्बंधित विधेयक का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी का स्तर उठाने में ही ज्यादा होगा। यह अनुशंसा भी की गई कि तमाम सीमाओं के बावजूद तय कर दी गई मजदूरी दर सख्ती से लागू होनी चाहिए।

1957 भारतीय श्रम सम्मेलन : 15वाँ सत्र

सम्मेलन ने यह माना कि न्यूनतम मजदूरी जरूरत आधारित होती है, इसलिए न्यूनतम मजदूरी से एक औद्योगिक मजदूर की न्यूनतम मानवीय जरूरतें पूरी होनी चाहिए। मजदूरी तय करने के पाँच मानदण्ड स्वीकार किये गये जो मजदूरी तय करने वाले सभी प्राधिकरणों, न्यूनतम मजदूरी समिति, वेतन बोर्ड के लिए लागू होंगे। ये मानदण्ड हैं:

1. एक मजदूर के लिए तीन सदस्यों वाले परिवार की गणना ।
2. डा० आईक्रॉइड द्वारा न्यूनतम खाद्य जरूरत की गणना के आधार पर एक सामान्य काम काज करने वाले भारतीय वयस्क के लिए 2700 कैलोरी वाला खाद्य मुहैया कराया जाना चाहिए।
3. कपड़ों की जरूरत का अनुमान इस आधार पर किया जाना चाहिए कि प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष १८ गज कपडे की खपत करता है। इस तरह चार सदस्य वाले एक सामान्य मजदूर परिवार के लिए यह जरूरत ७२ गज बनती है।
4. आवास का मानदण्ड होगा न्यूनतम किराया जो सरकार किसी भी इलाके में आर्थिक सहायता प्राप्त निम्न आय वर्ग के औद्योगिक आवास योजना के लिए तय करती है।
5. ईंधन, रोशनी व अन्य वस्तुओं के लिए खर्च न्यूनतम मजदूरी का कम से कम २० प्रतिशत होना चाहिए।

सम्मेलन ने यह भी तय किया कि जब भी तय की गई न्यूनतम मजदूरी अनुशंसा से कम पाई गई तो यह अधिकारियों की जिम्मेदारी होगी कि वे उन परिस्थितियों को जायज ठहरायें जिनके तहत तय किये गये मानदंडों का पालन नही किया जा सका।

1957 द्वितीय वेतन आयोग

इसने भारतीय श्रम सम्मेलन (15वाँ) के पोषण, वस्त्र, आवास व अन्य जरूरत सम्बंधी तीन व्यक्तियों के उपभोक्ता परिवार सम्बंधी मानदण्डों को स्वीकार किया। द्वितीय वेतन आयोग ने अपनी आहार तालिका अलग से तैयार की जो श्रम सम्मेलन में तय की गई कैलोरी से कम है।

1961 तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66)

इसने न्यूनतम मजदूरी कानून के कार्यान्वयन पर निराशा जाहिर की और यह भी कहा कि मजदूरी दर तय करने व उसकी समीक्षा करने के तरीके बहुत मामलों में प्रभावी नहीं साबित हुए हैं। यह सुझाव भी दिया गया कि देख-रेख करने वाली मशीनरी मजबूत की जाए जिससे बेहतर अमल हो सके।

1969 राष्ट्रीय श्रम आयोग

इस आयोग ने माना कि ऐसी न्यूनतम मजदूरी जो कि पूरे देश के लिए समान हो, न तो सम्भव है और न ही उसकी जरूरत है। अलग-अलग राज्यों के अलग-अलग इलाकों के लिए अलग-अलग दरें घोषित की जा सकती हैं। यह भी महसूस किया गया कि जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी परिभाषित करने में उसकी व्यावहारिकता की समस्या खड़ी होती है और यह भी सवाल उठता है कि क्या केवल जरूरत के आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय की जानी चाहिए। आयोग ने कुछ औद्योगिक केन्द्रों में मजदूर वर्ग द्वारा लिए जाने वाले आहार से पौष्टिक तत्व को अनुमानित किया जो कि राष्ट्रीय पौष्टिकता सलाहकार समिति के 'परिवार द्वारा क्या आहार लिया जाना चाहिए' से भिन्न है। आयोग ने यह भी महसूस किया कि 'जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी भी

एक स्तर की न्यायसंगत मजदूरी है जो उद्योगों में अभी दिये जाने वाले न्यूनतम से ज्यादा है'। आयोग ने यह भी कहा कि जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी मालिकों की मजदूरी देने की क्षमता को भी आकर्षित करती है। आयोग ने अलग-अलग इलाकों के लिए अलग-अलग आहार जरूरतों को रैखिक कम्प्यूटर कार्यक्रम का इस्तेमाल करके तय किया ।

1973 वेतन नीति पर समिति

इसने सुझाया कि 40 रू० प्रति महीने (अक्टूबर 1972 के मूल्य के आधार पर) अगर राष्ट्रीय न्यूनतम मान लें तो अलग-अलग केन्द्रों व इलाकों का न्यूनतम खपत मानक उनके रहन -सहन के खर्च में फर्क के आधार पर तय किया जा सकता है। न्यूनतम मजदूरी लागू करने के लिए एक क्रमबद्ध कार्यक्रम का सुझाव दिया गया जिसके तहत विभिन्न केन्द्रों व इलाकों के लिए तय न्यूनतम मजदूरी 1978-79 तक सभी लोगों के लिए लागू हो जानी चाहिए।

1976 राष्ट्रीय कृषि आयोग

बाजार में मजदूरों-मालिकों की विषमता ध्यान में रखते हुए आयोग ने यह सुझाव दिया कि अमल ऐसे क्षेत्रों में केन्द्रित किया जाना चाहिए जहाँ जाति व आर्थिक विषमता के कारण मजदूरी कम दी जाती है। इन इलाकों में न्यूनतम मजदूरी पर अमल की सफलता पंचायत व अन्य हितप्रहरी संस्थाओं (जैसे कि विधान सभा के स्थानीय सदस्य, जिला परिषद के अध्यक्ष, मजदूरों के प्रतिनिधि, मालिकों के प्रतिनिधि और इन सभी के बीच समन्वयन के लिए नियुक्त आधिकारिक सचिव के बीच आपसी तालमेल) और ऐसी नीतियों पर निर्भर होगी जो मजदूरों को संगठित करने वाली ताकतों को बढ़ावा देंगी। न्यूनतम मजदूरी की नीति रोजगार बढ़ाने वाले कार्यक्रमों जैसे ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आदि के साथ भी जोड़ने की जरूरत है जिससे दूसरे रोजगारों की न्यूनतम मजदूरी दर भी वैकल्पिक रोजगार के जरिए अप्रत्यक्ष तरीके से प्रभावित की जा सके।

1978 मजदूरी, आय व कीमतों पर अध्ययन समूह (भूतलिंगम समिति)

इस समिति का सुझाव था कि वास्तविक न्यूनतम मजदूरी सेक्टर, क्षेत्र, राज्य आदि के बावजूद एक मुकम्मिल राष्ट्रीय न्यूनतम हो सकता है जिसके नीचे कोई भी रोजगार देने की अनुमति नहीं होगी। यह जरूरी है कि राष्ट्रीय न्यूनतम का स्तर व्यावहारिक बँटवारे लायक आमदनी की सीमा के भीतर हो । कम मजदूरी वाले क्षेत्रों में मजदूरी बढ़ाने का मतलब होगा रोजगारों में कमी । देश के बहुसंख्य लोग राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय के नीचे हैं। इस आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय करने का मतलब है मजदूरों के बड़े हिस्से की मजदूरी में बेहतरी। अगर लघु और असंगठित क्षेत्र में उत्पादन लाभकारी होना हो तो मजदूरी का स्तर भी उत्पादकता के निम्न स्तर से मेल खाना चाहिए। रोजगार में मालिक मजदूर का स्थायी सम्बंध न्यूनतम मजदूरी कानून लागू होने की महत्त्वपूर्ण शर्त है। यह घरों में करने के लिए दिये जाने वाले कामों पर लागू नहीं हो सकता । चूँकि स्वरोजगार व मजदूरी पर किये जाने वाले रोजगार के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नही है इसलिए न्यूनतम मजदूरी कृषि क्षेत्र के लिए निरर्थक है। यहाँ एक वांछनीय ग्रामीण न्यूनतम घरेलू आमदनी ज्यादा सार्थक होगी।

1981 श्रम मंत्रियों की स्थायी समिति की उपसमिति 'डी'

न्यूनतम मजदूरी का स्तर गरीबी रेखा से नीचे नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी सुझाना व्यावहारिक नहीं है। जहाँ भी सम्भव हो, मंहगाई भत्ता न्यूनतम मजदूरी का हिस्सा होना चाहिए।

1981 न्यूनतम मजदूरी सलाहकार समिति

इसने माना कि यह अच्छा होगा कि परिवर्तित मंहगाई भत्ता न्यूनतम मजदूरी फार्मूले के साथ जोड़ा जाय, जिससे जरूरत के अनुसार मजदूरों की वास्तविक मजदूरी की रक्षा की जा सके।

1981 राज्य सचिवों की समिति की रिपोर्ट

इसकी संस्तुति थी कि न्यूनतम मजदूरी का स्तर ऐसा होना चाहिए कि तीन सदस्यों वाले परिवार का उपभोग स्तर गरीबी की रेखा से ऊपर लाया जा सके। उपभोग श्रेणी प्रति व्यक्ति प्रति दिन 2400 कैलोरी ग्रामीण क्षेत्र के लिए होनी चाहिए तथा 2100 कैलोरी शहरी क्षेत्र के लिए । वस्त्र, आवास, ईंधन, बिजली और शिक्षा भी इसके साथ होनी चाहिए। अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक संख्या (1960-100) को आधार बनाकर 6 महीने में एक बार मंहगाई भत्ते का संशोधन होना चाहिए।

1988 असंगठित कृषि मजदूरों की संसदीय सलाहकार समिति (गुरूदास दासगुप्ता समिति) की उप समिति

इसने सुझाव दिया कि न्यूनतम मजदूरी तार्किक आधारों पर तय की जानी चाहिए जिसमें गरीबी की रेखा, पोषण की जरूरतें, आवास, वस्त्र, ईंधन, रोशनी, स्वास्थ्य व शिक्षा के खर्चे भी शामिल होने चाहिए और परिवार में उपभोक्ता सदस्यों की संख्या और काम करने वाले सदस्यों की संख्या का वास्तविक आंकलन भी होना चाहिए। इसे भुगतान करने की क्षमता से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। इसे उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के निर्वाह व्यय में परिवर्तन के साथ जोड़ा जाना चाहिए और इसे हर दो साल या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में 50 बिन्दुओं की बढ़ोत्तरी के बाद संशोधित किया जाना चाहिए।

1991 ग्रामीण मजदूरों पर राष्ट्रीय आयोग

इस आयोग ने उन मूलभूत तत्वों का उल्लेख किया जिनसे न्यूनतम मजदूरी तय होती है । ये हैं:

1 जीवन निर्वाह के न्यूनतम स्तर के लिए मजदूर व उसके परिवार के तीन सदस्यों की उपभोग इकाई का निर्वाह खर्च।

2 न्यूनतम मजदूरी सभी रोजगारों के लिए समान होगी। न्यूनतम मजदूरी को निर्वाह स्तर से नीचे न गिरने देने के लिए उसे मंहगाई भत्ते से जोड़ा जाना चाहिए तथा इसे ही 6 महीने पर संयोजित करना चाहिए। ग्रामीण इलाके में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कैलोरी की खपत 2400 निर्धारित की गई और शहरी इलाके में प्रति दिन प्रति व्यक्ति 2100 । ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक आधार वर्ष 1960 के 804 बिन्दुओं पर 510 रूपये प्रति महीना सुझाया गया। शहरी क्षेत्र के लिए यह 650 रू० प्रति महीना या 25 रू० प्रति दिन तय किया गया। सभी राज्यों के हर जिला मुख्यालय में एक त्रिपक्षीय निकाय कायम करने की जरूरत पर जोर दिया गया जो न्यूनतम मजदूरी कानून पर अमल की देख-रेख करेगा। गाँव के स्तर पर विवाद निपटारा तंत्र तथा पंचायती राज्य व्यवस्था, स्वयंसेवी संस्थान, ट्रेड यूनियन व मजदूर समितियों को साथ लेकर इन्हें संस्थागत रूप देने की जरूरत पर जोर दिया गया। न्यूनतम मजदूरी कानून में सुधार की जरूरत सुझायी गयी जिससे न्यूनतम मजदूरी कानून में छूट का प्रावधान खत्म किया जा सके। इस कानून के लागू होने के लिए मजदूरों की न्यूनतम संख्या सम्बंधी प्रावधान खत्म करने की अनुशंसा की गई और प्रमाणित करने की जिम्मेदारी मालिक पर आयद की गई।

1992 रेप्टाकोस ब्रेट कम्पनी के मजदूर बनाम मैनेजमेंट मुकदमे में उच्चतम न्यायालय

" न्यूनतम मजदूरी की अवधारणा आज वही नहीं है जो 1936 में थी। एक मजदूर की मजदूरी आज केवल मजदूर और मालिक के बीच का अनुबंध ही नहीं है । इसके पीछे श्रम कानूनों की सामूहिक सौदेबाजी की ताकत भी होती है। हर श्रेणी की मजदूरी को सामाजिक न्याय के तराजू पर तोलना होगा क्योंकि वही हमारे समाज का ताना बाना है। " उच्चतम न्यायालय के अनुसार , " न्यूनतम मजदूरी तय करने के लिए भारतीय श्रम आन्दोलन के 15 वें सत्र में तय किये गये मानदण्डों के साथ-साथ अग्रलिखित अवयवों को भी नई न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की प्रक्रिया से जोड़ना होगा। बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बंधी जरूरतें, न्यूनतम मनोरंजन जैसे त्योहार , वृद्धावस्था के लिए प्रावधान। ये सब मिलाकर कुल न्यूनतम मजदूरी का 25 प्रतिशत और होना चाहिए।" न्यायालय ने आगे कहा, " मजदूरी का ढाँचा जो करीब-करीब इन छः हिस्सों की पूर्ति करता है वह जीवन निर्वाह स्तर की न्यूनतम मजदूरी से ज्यादा नहीं है। मजदूर सभी परिस्थितियों व सभी समयों पर न्यूनतम मजदूरी के हकदार हैं। जो मालिक न्यूनतम मजदूरी नहीं अदा कर सकता, उसे मजदूर रखने व उद्योग चलाने का कोई अधिकार नहीं है। "

अक्षम्य लापरवाही

न्यूनतम मजदूरी तय करने में मनमानी, इसके अमल में हजार कमियाँ और अपराधपूर्ण लापरवाही और मजदूरी के संशोधन में देरी– इन सारे कारणों से न्यूनतम मजदूरी अधिनियम मृतप्राय हो गया है। बिहार सरकार ने कृषि मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी 27.30 रूपये तय की है, पर धनबाद के नजदीक काम करने वाले एक खेत मजदूर अरूण कुमार को 20 रूपये और दिन का खाना मिलता है। इसी इलाके में सोनामुनी भी खेत मजदूरी करती है। उसे 15 रूपये मजदूरी और 200-250 ग्राम मूढ़ी मिलती है। बिहार के अन्य हिस्सों में स्थितियाँ और भी खराब हैं। बाढ़ के फतेहपुर, अहरवा और फूलपुर गाँवों में खेत मजदूरों की मजदूरी एक किलोग्राम चावल या आटा और नाश्ते के लिए आधा किलोग्राम सत्तू है। मसौढ़ी के गाँवों में बतौर मजदूरी पुरुष को 5 किलोग्राम और महिला को 3 किलोग्राम अनाज मिलता है। भोजपुर के बरूही गांव में पुरुष खेत मजदूरों को 25 रूपये, नाश्ता और खाना मिलता है, जबकि महिला को 15 रूपये और दो रोटी का नाश्ता। बिहार सरकार दावा करती है कि राज्य में कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी पर अमल के लिए देश के अन्य राज्यों से ज्यादा इंस्पेक्टर हैं, फिर भी राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मजदूरी पर अमल नहीं हो पा रहा है।

22 वर्षीय रंजीत धिम्बल महाराष्ट्र में नमक निकालने का काम करता है। उसे रोजाना 30 से 35 रूपये मजदूरी मिलती है जबकि राज्य न्यूनतम मजदूरी बोर्ड ने इस क्षेत्र के लिए 78.35 रूपये न्यूनतम मजदूरी तय की है। यहाँ के कार्यकर्ता प्रदीप प्रभु कहते हैं कि ' यह काम नवंबर से मई तक होता है। इसमें रोजगार एक तरह की मौसमी गुलामी है। मजदूरों को पहले ही अग्रिम दे दिया जाता है। जब वे दीवाली के बाद काम पर आते हैं तो उन्हें हर हफ्ते केवल जरूरी खर्चों के लिए रूपया मिलता है। मौसम के अन्त में सारी मजदूरी जोड़ी जाती है और दी जाती है '।

28 वर्षीय ज्योति बाई रायपुर प्लाईवुड प्राइवेट लिमिटेड में काम करती है। मध्य प्रदेश सरकार ने इस क्षेत्र के लिए रोजाना न्यूनतम मजदूरी 33.92 रूपये तय की है। पर उसकी मजदूरी केवल 22 रूपये है। महाराष्ट्र के इंजीनियरिंग उद्योग में कानूनन न्यूनतम मजदूरी 59.50 रूपये है, पर मुम्बई में काम करने वाले दामोदर सिवले को रोज केवल 42 रूपये ही मिलते हैं।

ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। राज्य सरकारों और संबंधित तंत्र के उदासीन रवैये के कारण मजदूरों का भयंकर शोषण होता है। मजदूरों को इतना कम मिलता है कि यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्हें गरीबों के स्तर की मजदूरी मिल रही है।

ऐसी भी मिसालें हैं जहाँ मजदूरों को उनकी जरूरत के हिसाब से तो मजदूरी नहीं मिलती है, फिर भी उनकी मजदूरी सरकार द्वारा निर्धारित मजदूरी से ज्यादा होती है। इससे एक ओर यह पता लगता है कि न्यूनतम मजदूरी तय करने में मनमानी की गई और दूसरी ओर यह कि इसमें समय-समय पर संशोधन भी नही किया गया ।

पुरी के एक निर्माण मजदूर दलीम बेहरा की दैनिक मजदूरी 40 रूपये है। पर उड़ीसा सरकार ने इस क्षेत्र के लिए केवल 25 रूपये मजदूरी तय की है। इसी तरह, जयपुर शहर में काम करने वाले निर्माण मजदूर श्रवण कुमार बेरवा को रोजाना 60 रूपये मिलते हैं, जबकि राजस्थान सरकार की इस क्षेत्र की निर्धारित मजदूरी 32 रूपये है। कानपुर की एक साबुन फैक्टरी में काम करने वाली विमला को रोजाना 27 रूपये मिलते हैं जबकि उत्तर प्रदेश सरकार ने इसके लिए 25.64 रूपये तय किये हैं। आंध्र प्रदेश सरकार ने मत्स्य और समुद्री खाद्य क्षेत्र के लिए मासिक न्यूनतम मजदूरी 855 रूपये तय की है लेकिन इस क्षेत्र में काम करने वाली सलेमा जेवियर को रोजाना 40 रूपये मिलते है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के तहत हर पाँच सालों में मजदूरी का संशोधन होना चाहिए। गुरुदास दासगुप्ता समिति (1988) ने हर दो साल में संशोधन का सुझाव दिया। उन्होनें यह भी सुझाव दिया कि न्यूनतम मजदूरी के साथ परिवर्तनीय मंहगाई भत्ता होना चाहिए और मजदूरों की वास्तविक मजदूरी की रक्षा के लिए इसे समय -समय पर बदलना चाहिए। राज्यों के श्रम सचिवों की समिति (1991) का कहना है कि अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर हर छः माह में मंहगाई भत्ता संशोधित होना चाहिए। ये सारे सुझाव कागजी हैं। सच तो यह है कि वास्तव में मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी या तो स्थिर है या नीचे गिर रही है।

सरकारी मनमानी और लापरवाही का ही दूसरा पक्ष है: न्यूनतम मजदूरी के मामलें में पारदर्शिता और भागीदारी का अभाव।

श्रम विभाग की मशीनरी असंगठित और अनौपचारिक तथा कृषि क्षेत्र में ही क्या, संगठित क्षेत्र में शोषण करने वाले कारखानों में भी इस अधिनियम का क्रियान्वन कराने में असफल रही है। इसी संदर्भ में ग्रामीण मजदूरों के लिए गठित किये गये राष्ट्रीय आयोग (1991) ने जिला स्तर पर त्रिपक्षीय कमेटी बनाने, ग्रामीण स्तर पर संयुक्त समिति गठित करने और इन सबमें पंचायती राज संस्थाओं, ट्रेड यूनियनों, मजदूर संगठनों, स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी सुनिश्चित करने का सुझाव दिया था । ग्रामीण मजदूरों के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग की समिति के अध्यक्ष हिलेरी पायस का कहना है कि ' केरल में न्यूनतम मजदूरी पर सबसे अच्छा अमल हो रहा है, क्योंकि यहाँ पंचायत स्तर पर भी त्रिपक्षीय व्यवस्था काम करती है '।

जीवन और संघर्ष

" क्षेत्र चाहे जो भी हो, मजदूरों का संगठन और संघर्ष जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका है ", नेशनल सेन्टर फॉर लेबर के सचिव डी० थंकप्पन यह आहवान करते हैं। सचमुच, देश भर में कई बार स्वतः स्फूर्त तरीके से मजदूर संगठित होकर बेहतर मजदूरी की माँग उठाते हैं। कई बार मजदूरों के संगठित संघर्ष से न्यूनतम मजदूरी बढ़ाने में सफलता भी हासिल हुई है। कई बार ये संघर्ष लम्बे समय तक चले हैं। रायपुर में छत्तीसगढ़ श्रमिक संघ ने आठ महीने से भी ज्यादा समय तक एक कारखाने में न्यूनतम मजदूरी की लड़ाई लड़ी है।

महाराष्ट्र में नमक बनाने वाले क्षेत्रों में पिछले 10 सालों से न्यूनतम मजदूरी कानून पर अमल की लड़ाई जारी है। पिछले साल मजदूरों ने 20 मालिकों से 2500 मजदूरों की बकाया 26 लाख रूपये मजदूरी का भुगतान कराया है। कानपुर में दूध उत्पादक सहकारी संघ के मजदूरों ने जनवरी 1997 से न्यूनतम मजदूरी कानून पर अमल की माँग के समर्थन में आंदोलन छेड़ दिया। तीन मजदूर निलंबित कर दिए गए। मजदूर श्रम न्यायालय गये। जिला श्रम आयुक्त ने प्रबंधकों को नोटिस भेजा, पर यूनियन से बातचीत करने से मना कर दिया।

" क्षेत्र चाहे जो भी हो, मजदूरों का संगठन और संघर्ष जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका है ", नेशनल सेन्टर फॉर लेबर के सचिव डी० थंकप्पन यह आहवान करते हैं।

बिहार के गोरैया खारी गाँव में खेत मजदूरों ने 2 किलोग्राम अनाज की मजदूरी की बजाय 3 किलोग्राम अनाज की माँग करते हुए दो दिन काम बंद कर दिया। भूस्वामियों ने बाहर से मजदूर बुलाए। इसका स्थानीय हड़ताली मजदूरों ने विरोध किया। इस पर भूस्वामी गोलीबारी पर उतर आए , जिसमें एक मजदूर मारा गया।

कर्नाटक सरकार के पशुपालन निदेशालय के दैनिक वेतनभोगी मजदूरों ने अपनी यूनियन के नेतृत्व में फरवरी 1994 में हड़ताल की। इसका यह नतीजा निकला कि राज्य सरकार ने इस क्षेत्र के लिए न्यूनतम मजदूरी की घोषणा की। इसी प्रकार का एक संघर्ष 1991 में राजस्थान में मजदूर किसान संगठन के नेतृत्व में हुआ। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की छूट की धारा का इस्तेमाल करके राजस्थान सरकार उदयपुर के भीम क्षेत्र में जवाहर रोजगार योजना में कार्यरत मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी नहीं दे रही थी। इस संघर्ष में भी उल्लेखनीय सफलता हासिल हुई।

समय आ गया है कि सरकार और मालिक देश के कोने-कोने से उठ रही सामाजिक न्याय की आवाजें सुनें। देश के करोड़ों गरीबों की जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी की माँग उनकी आर्थिक और सामाजिक मान्यता की माँग की ठोस अभिव्यक्ति है। यह राष्ट्रीय आय में उचित भागीदारी की माँग है और यह माँग है जीवन का अधिकार बहाल करने की।

[इन साथियों ने न्यूनतम मजदूरी और इसके संघर्षों से संबंधित जानकारियाँ दी हैं : अशोक चौधरी, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, शमशाद आलम, पूर्णिया, बिहार, एल कालप्पा , बंगलूर, प्रवीण कुमार प्रधान, चाईबासा, बिहार, कांति मेहता, पुरी, उड़ीसा, एस दास गुप्ता, धनबाद, बिहार, एन वासुदेवन, मुम्बई, पी के सुर, कानपुर, उत्तर प्रदेश, हरेकृष्ण देवनाथ, डायमंड हार्बर, पश्चिम बंगाल, श्रीलता स्वामीनाथन, जयपुर, राजस्थान, थॉमस कोचरी, कोच्चिन, केरल, प्रदीप प्रभु , धुले, महाराष्ट्र, सरोज चौबे, पटना, बिहार, समीर राय, जलपाइगुड़ी, पश्चिम बंगाल और एलीना सेन, रायपुर, मध्य प्रदेश।]

असंगतियों में फँसा संगठित क्षेत्र

मुकुल शर्मा

असंगठित क्षेत्र के लिए सरकार श्रम की एक न्यूनतंम कीमत तय कर देती है और मजदूरी तय करने का काम बाजारी शक्तियों पर छोड़ देती है। इसके उलट संगठित क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप और नियंत्रण ज्यादा है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सरकार खुद न्यूनतम मजदूरी के मानदण्ड तय करती है। इस प्रकार वह सीधे मजदूरी तय करती है। निजी क्षेत्र में सरकार वेज बोर्ड गठित करके परोक्ष रूप से मजदूरी तय करती है। सूचकांक निर्धारण के नियम, बोनस का भुगतान और सामाजिक सुरक्षा के उपाय भी संगठित क्षेत्र में मजदूरी के ढाँचे और उनमें कमी-बेशी करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मतलब यह कि सरकार की न्यूनतम मजदूरी नीति में एक दोहरापन है। सरकार जहां असंगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण में किसी मानदण्ड पर अमल जरूरी नहीं मानती, वहीं संगठित क्षेत्र में वह जीवनयापन के खर्च, पोषण की जरूरतों और ऐसी ही अन्य कई बातें ध्यान में रखती है। यही वजह है कि असंगठित और संगठित क्षेत्र के मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी में इतना ज्यादा फर्क है। किसी कपड़ा मिल में पावरलूम पर काम करने वाले एक मजदूर को असंगठित क्षेत्र में वही काम करने वाले मजदूर से 50 - 60 प्रतिशत ज्यादा न्यूनतम मजदूरी मिलती है।पर इतना कहना पर्याप्त नहीं है। इसके बाद यह सवाल पूछना जरूरी हो जाता है कि क्या सरकार संगठित क्षेत्र के मजदूरों के साथ पूरा-पूरा न्याय करती है? क्या उनके प्रति उसका बर्ताव उसके घोषित आदर्शों -न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित करना, मजदूरी में लगातार वृद्धि के लिए स्थितियाँ पैदा करना, या न्यूनतम मजदूरी तय करने के जरिये आय की असमानताएं कम करना - के अनुरूप है? इसका साफ-साफ उत्तर है 'नहीं', विशेष रूप से तब जब हम पाते हैं कि संगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण, सूचकांक तय करने और मजूदरी के निर्धारण के लिए व्यापक तौर पर जिन मानदण्डों की सिफारिश की जाती है, उनकी खुलेआम लगातार उपेक्षा की जा रही है। सरकार संगठित क्षेत्र में भी इन सिद्धांतों के साथ खिलवाड़ करती है, हालाँकि अपेक्षाकृत ढँके-छुपे और चालाक तरीके से। आज जब संगठित क्षेत्र खुद पुनर्गठन की प्रकिया से गुजर रहा है और इसमें अनियमित/ठेकेदारी/अस्थाई/अनौपचारिक मजदूरों की संख्या बढ़ती जा रही है, यह प्रवृत्ति ज्यादा जोर पकड़ रही है।

> आज जब संगठित क्षेत्र खुद पुनर्गठन की प्रकिया से गुजर रहा है और इसमें अनियमित/ठेकेदारी/अस्थाई/अनौपचारिक मजदूरों की संख्या बढ़ती जा रही है, यह प्रवृत्ति ज्यादा जोर पकड़ रही है।

वेज बोर्ड और न्यूनतम मजदूरी

वेज बोर्ड त्रिपक्षीय होते हैं। संगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी मूलत: ये बोर्ड ही तय करते हैं। आमतौर पर पहले किसी उद्योग की सबसे निचली श्रेणी के मजदूर की न्यूनतम मजूदरी तय की जाती है और फिर उसके आधार पर अलग-अलग मजूदरी का पूरा ढाँचा खड़ा किया जाता है। पहला वेज बोर्ड 30 मार्च, 1957 को कपड़ा उद्योग के लिए गठित किया गया था। उसके बाद साठ

और सत्तर के दशक में चीनी, सीमेंट, जूट, बागानों जैसे उद्योगों के लिए वेज बोर्ड गठित किये गये। इन वेज बोर्डों ने न्यूनतम मजदूरी के जो आधार तय किये, वे आज भी लागू हैं हालांकि उद्योग की बनावट, मुनाफे में वृद्धि और उत्पादकता के स्तर में कई परिवर्तन हुए हैं। ये आधार अपने आप में गलत और त्रुटिपूर्ण हैं। लेकिन इस गलती को कभी सुधारा नहीं गया। मिसाल के तौर पर कोयला खान के मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण लिया जा सकता है।

भारतीय राष्ट्रीय खान मजदूर संघ ने 1960 के दशक के शुरूआती वर्षों में न्यूनतम मजदूरी 210 रूपये प्रति माह मानी थी। 1967 में कोयला खनन उद्योग के लिए गठित केन्द्रीय वेज बोर्ड ने भी माना कि ' कोयला खान के मजदूर का काम भी लोहा और इस्पात उद्योग के मजदूर की तरह श्रमसाध्य है '। उसकी नजर में खान के भीतर काम करने वाला मजदूर ज्यादा कड़ी मेहनत करता है। इसलिए उसकी जरूरत 2000 कैलोरी से ज्यादा की है। बोर्ड ने लोहा और इस्पात उद्योग द्वारा दी जाने वाली खुराक के आधार पर न्यूनतम मजदूरी का हिसाब लगाया और यह तय किया कि 1 अक्टूबर, 1966 को कोयला खान के सबसे निचली श्रेणी के अकुशल मजदूर की न्यूनतम मजदूरी 4.54 रूपये प्रतिदिन या 118.04 रूपये प्रति माह होनी चाहिए। श्रम अपील ट्राइब्यूनल ने 1966 में जीवन निर्वाह सूचकांक 102 मानते हुए न्यूनतम मजदूरी 69.06 रूपये तय की। 1965 में जीवन निर्वाह का औसत सूचकांक 166 था। अगर जीवन निर्वाह सूचकांक 102 मान लिया जाए तो 118.04 रूपये की मजदूरी का वास्तविक मूल्य लगभग 72.50 रूपये होगा। श्रम अपील ट्राइब्यूनल के मुकाबले वेज बोर्ड द्वारा तय की गई मजदूरी थोड़ी ज्यादा है। तो भी यह भारतीय राष्ट्रीय खान मजदूर संघ की परिवार की जरूरत आधारित मांग से भी काफी कम है। वेज बोर्ड के अनुसार, " यदि औसत जीवन निर्वाह सूचकांक 166 मान कर हिसाब लगाया जाए तो अनुदार हिसाब से भी तीन उपभोक्ताओं की इकाई वाले किसी खनिक परिवार की जरूरत आधारित मांग 144.82 रूपये होगी। "

> संगठित क्षेत्र में एक ऐसी स्थिति पैदा हो रही है जिसमें न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के कुछ सुपरिभाषित प्रतिमान व्यवहार में छोड़े जा रहे हैं।

वेतन आयोग: असमानता से घिरा

वेतन आयोग समय-समय पर केन्द्रीय और राज्य स्तर के कर्मचारियों और विभागीय उपक्रमों के कर्मियों की न्यूनतम मजदूरी, वेतन का ढाँचा और सेवा शर्तें तय करता है। उसका काम न सिर्फ वेतन के ढाँचे और मंहगाई भत्ते के भुगतान की व्यवस्था तय करना है बल्कि उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह न्यूनतम और अधिकतम वेतन के बीच की खाई भी कम करेगा। लेकिन पाँचवे वेतन आयोग ने ठीक इसका उलटा किया है। इसने सरकारी कर्मचारियों के लिए 2400 रूपये प्रति माह न्यूनतम वेतन की सिफारिश की है। यह मौजूदा कुल वेतन में 20-25 प्रतिशत की वृद्धि है, लेकिन असलियत में इसका अर्थ है वेतन में कमी, खासकर उनके लिए जो सरकारी क्वार्टरों में रहते है। दूसरी तरफ वरिष्ठतम पदाधिकारियों -सचिवों का वेतन 26,000 रूपये प्रति माह तय किया गया है। यह मौजूदा कुल वेतन में 126 प्रतिशत की वृद्धि है। इसके अलावा कई अतिरिक्त सुविधाएँ भी दी गई हैं। जैसे कि प्रति माह 1000 रूपये का मनोरंजन भत्ता, 1500 रूपये प्रति माह का टेलीफोन आपरेटर भत्ता, परिवहन भत्ता, एल टी सी के तहत पूरे परिवार को हवाई यात्रा की सुविधा, इत्यादि। ये सभी ऊँचे वेतनमान वाले अधिकारियों का कुल वेतन और भी बढ़ा देते हैं।

असली मजदूरी में कमी

संगठित क्षेत्र की न्यूनतम मजदूरी में मूल वेतन और मंहगाई भत्ता के रूप में जीवन निर्वाह के खर्चे में बढ़ोत्तरी की भरपाई भी शामिल है। लेकिन सूचकांकों के निर्धारण के नियम मजदूर के जीवन निर्वाह की कीमतों में बढोत्तरी की पूरी भरपाई नहीं कर पाते। औसतन मजूदरी में कीमतों की तुलना में कम बढ़ोत्तरी होती है। टी सी ए आनंद और के सुकुमारन कहते हैं कि ' भारत में संगठित क्षेत्र में वेतन वृद्धि की औसत सालाना दर दो प्रतिशत से ज्यादा नहीं है जबकि सूचकांकों के निर्धारण की औसत दर

लगभग 65 प्रतिशत है। ऐसे में, मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर यदि 6 प्रतिशत या ज्यादा हो तो यह तय है कि औसत वास्तविक मजदूरी घट जाएगी। इसके अलावा, सूचकांकों का निर्धारण चूंकि बाद में होता है, लिहाजा बढ़ती मुद्रा स्फीति वास्तविक मजदूरी को और कम कर देगी '।

इस पूरे दौर में हमारे देश में मुद्रा स्फीति की दर 6 प्रतिशत से ज्यादा रही है। वेज बोर्ड का गठन और मजदूरी पुनरीक्षण साठ और सत्तर के दशक में तो जल्दी-जल्दी हुए, लेकिन अब वे लगभग अतीत की चीज बन गए हैं। ऐसे में वास्तविक मजदूरी में कमी संगठित क्षेत्र की न्यूनतम मजदूरी पर दबाव बढ़ाती है और अधोगामी लचीलापन पैदा करती है।

वेज बोर्डों द्वारा अनुशंसित वास्तविक न्यूनतम मजदूरी				
वेज बोर्ड	उद्योग	वर्ष	1960 की कीमत पर वास्तविक मजदूरी	
			रूपये प्रतिमाह	रूपये प्रतिमाह
प्रथम वेज बोर्ड	सूती कपड़ा	1960	102.60	3.95
प्रथम वेज बोर्ड	चीनी	1961	59.40	2.28
द्वितीय वेज बोर्ड	चीनी	1970	82.95	3.19
तृतीय वेज बोर्ड	चीनी	1989	107.53	4.13
प्रथम वेज बोर्ड	सीमेंट	1960	89.60	3.45
द्वितीय वेज बोर्ड	सीमेंट	1968	99.76	3.84
प्रथम वेज बोर्ड	लोहा व इस्पात	1965	105.93	4.07
प्रथम वेज बोर्ड	रसायन उर्वरक	1968	98.84	3.80
प्रथम वेज बोर्ड	इंजीनियरिंग	1970	119.06	4.58
प्रथम वेतन आयोग	केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी	1947	91.67	3.52
द्वितीय वेतन आयोग	केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी	1959	84.21	3.24
तृतीय वेतन आयोग	केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी	1973	98.00	3.77
चतुर्थ वेतन आयोग	केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी	1986	123.35	4.74
पांचवा वेतन आयोग	केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी	1997	143.52	5.52

लिहाजा संगठित क्षेत्र में एक ऐसी स्थिति पैदा हो रही है जिसमें न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के कुछ सुपरिभाषित प्रतिमान व्यवहार में छोड़े जा रहे हैं। अनियमित पुनरीक्षण, समुचित सूचकांकों के निर्धारण का अभाव, शोषण, असमानता, आदि असंगठित क्षेत्र के रोग रहे हैं। ये न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण और क्रियान्वयन लगभग असंभव बना देते हैं। ये लक्षण अब संगठित क्षेत्र में भी दिखने लगे हैं और इस क्षेत्र में भी न्यूनतम मजदूरी का मूल तर्क निष्प्रभावी बना रहे हैं।

कानपुर

ठेका मजदूरों की आर-पार की लड़ाई

देवी प्रसाद मिश्र

18 फरवरी 1998 को जब कानपुर की एन० टी० सी० के ठेका मजदूरों का मैराथन धरना खत्म हुआ तो इस विश्वास की एक बार फिर पुष्टि हुई कि एकजुटता और संघर्ष के नतीजे बेकार नहीं जाते। एन० टी० सी० के मुख्यालय पर ग्यारह महीने से डेरा डाले 540 ठेका मजदूरों ने एन० टी० सी० चेयरमैन को यह मानने पर मजबूर कर दिया कि ठेका श्रमिकों को काम पर बहाल कर दिया जायेगा और उन्हें मिलने वाली बकाया रकम को यथाशीघ्र चुका दिया जायेगा। दरअसल सूती मिल मजदूरों की जीत का यह केवल पहला चरण है। उनकी निगाह अब इस बात पर है कि कैसे एन० टी० सी० से ठेका मजदूरी को नेस्तनाबूत कर दिया जाए। उन्हें उम्मीद है कि अगले पाँच -छः महीनों में इस लक्ष्य को भी हासिल कर लिया जायेगा। लेकिन इस आशावान और चमकदार परिदृश्य तक पहुँचने में एन० टी० सी० के 540 ठेका मजदूरों को एक लंबी और घुमावदार सुरंग से गुजरने की अनिश्चितता और यातना झेलनी पड़ी। कई दफा तो यह भी लगा कि वे एक अंधी गली में आकर फँस गये हैं जहाँ से बाहर कोई रास्ता नहीं जाता। लेकिन हठधर्मी प्रबंधन के सामने इन मजदूरों ने घुटने टेकने से न केवल इंकार कर दिया, बल्कि एक सक्रिय और सकारात्मक हठ का प्रतिपक्ष प्रस्तुत किया।

इस लड़ाई के परिप्रेक्ष्य और निहितार्थों को समझने के लिये हमें पीछे जाना होगा। कानपुर में सार्वजनिक क्षेत्र में आठ सूती मिलें हैं। इनमें पाँच एन० टी० सी० के अधीन हैं और अन्य तीन मिलें बी० आई०सी० के अंतर्गत हैं। इनकी हालत इतनी खस्ता है कि लगभग ६ साल पहले सरकार ने इन मिलों में उत्पादन बंद कर दिया और यह निर्णय लिया कि इनके दस-बारह हजार मजदूरों को बिना काम के ही पैसा दिया जायेगा। सरकारी प्रबंधन का मानना है कि इन मिलों को चलाने से ज्यादा बेहतर है इन्हें बंद कर देना। कहना न होगा कि औद्योगिक क्षेत्र में पस्ती और समर्पणवाद का इससे अधिक शास्त्रीय उदाहरण शायद ही कोई मिले।

लेकिन सबसे भयावह बात यह थी कि एन० टी० सी ० और बी० आई० सी० की आठ मिलों में बीस-पच्चीस सालों से ठेका श्रमिक काम कर रहे थे और मिलों में उत्पादन के प्रमुख कामों से जुड़े हुए थे । उनकी संख्या लगभग 800 थी। यह बात गौरतलब है कि उत्तर प्रदेश शासन ने एक आदेश निकालकर दिनाँक 24-4-90 को इन मिलों में ठेका प्रथा को खत्म कर दिया था । इस शासनादेश के अनुसार इन श्रमिकों को बाकायदा मिल का नियमित श्रमिक घोषित किया गया था । इस स्पष्ट आदेश के बावजूद इन ठेका श्रमिकों को मिल का नियमित श्रमिक नहीं बनाया गया । दिलचस्प बात यह है कि नियमित मिल मजदूरों की तरह इन श्रमिकों के भविष्य निधि व ई०एस०आई० सम्बंधी अंशदान काटे जाते रहे लेकिन अभी तो इन मजदूरों को अपने जीवन का सबसे दुर्दान्त अनुभव झेलना बाकी था । हुआ यह कि 3-6-93 को एन०टी० सी० मिलों में कार्यरत 540 कथित ठेका श्रमिकों को काम पर जाने से रोक दिया गया । इसके लिए जोर जबरदस्ती की गयी । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये मजदूर उत्पादन के महत्त्वपूर्ण

घटकों से जुड़े हुए थे। इसी तरह बी०आई०सी० के ठेका श्रमिकों को 1996 में कार्य मुक्त कर दिया गया । बी०आई०सी० के ठेका मजदूरों ने जब अपनी हकदारी की बात की तो श्रमायुक्त (उत्तर प्रदेश) ने इन श्रमिकों की बहाली व बकाया वेतन देने का परामर्श दिया । इस स्पष्ट परामर्श के बावजूद इन श्रमिकों को लगातार ६ महीने तक लड़ाई लड़नी पड़ी जिसके परिणामस्वरूप सन् १९९७ में इन्हें अपनी बहाली और बकाया वेतन राशि मिल सकी। लेकिन एन०टी०सी० के 540 ठेका श्रमिकों की लड़ाई लम्बी ही नहीं थी, तमाम उत्पीड़क अनिश्चयों से भरी हुई थी । दरअसल 3-6-93 को जब अचानक इन ठेका श्रमिकों को जबरदस्ती काम पर जाने से रोक दिया गया तो सिर्फ चार दिन बाद ही उत्तर प्रदेश के श्रमायुक्त ने इनकी बहाली व बकाया वेतन के लिए प्रबंधकों

"हम एक बड़ा और व्यापक आन्दोलन चाहते हैं"

कपड़ा मिल मजदूर यूनियन के प्रमुख नेता मोनासूर से बातचीत के कुछ अंश

चेयरमैन के साथ यूनियन का जो समझौता हुआ है उसके ठीक-ठीक घटक क्या हैं?

इस समझौते के तीन हिस्से हैं। एक, 540 ठेका श्रमिकों की बहाली। दो, उनके बकाया वेतन का जिम्मा कपड़ा मंत्रालय और एन०टी०सी० पर छोड़ा गया है और तीन, ठेका मजदूरों को मिल श्रमिक बनाने पर विचार किया जायेगा। पहले को लेकर हम सबकी सहमति है। विवाद अन्य दो बातों को लेकर है।

कपड़ा मिल मजदूर यूनियन के तत्त्वाधान में 540 ठेका मजदूरों की लड़ाई का प्रमुख मुद्दा क्या था?

प्रमुख मुद्दा था ठेका मजदूरों की बहाली। लेकिन हम इसके आगे जाकर सूती मिलों में ठेका प्रथा का समूल नाश चाहते हैं। हम चाहते हैं कि इन मजदूरों को जो मजदूरी मिले वह अखिल भारतीय स्तर की हो। हमारी लड़ाई इस बात को लेकर भी है कि ठेका श्रमिकों को बाकायदा नियमित मिल श्रमिक माना जाये।

श्रम संस्कृति में ठेका श्रम कलंक की तरह है?

जी हां, यह बदनुमा दाग की तरह है। हमने सामूहिक रूप से यह तय किया है कि अगर हमें ठेका श्रमिक के रूप में ही रखा जाता है तो हम बिना एरियर के नहीं जायेंगे। लेकिन अगर हमें स्थायी मिल वर्कर बना दिया जाता है तो हम लोग अपना बकाया छोड़ने को तैयार हैं। दरअसल पाँच साल का बकाया ज्यादा से ज्यादा 75-80 हजार होगा। ठेका मजदूरों को मिलता ही कितना है?

इसे आप आर-पार की लड़ाई कहते हैं?

बिल्कुल, तमाम प्रयास जब बेकार हो गये तो हमें लड़ो या मरो की नीति अपनानी पड़ी। मजदूरों ने बरसात, लू, सर्दी, गर्मी झेली लेकिन अपने निश्चय पर अडिग रहे। 27-3-97 से जो धरना शुरू हुआ था वह 18-2-98 तक चला। इस दौरान जिन सात मजदूरों की मौतें हुई हैं उनके लिए फिलहाल कुछ नहीं हुआ है। हमारी माँग यह है कि उनके घर में किसी को या तो रोजगार दिया जाय, या मुआवजा।

यह एक भयावह तथ्य देखने में आया कि प्रबंधकों नें न्यायपालिका की अनदेखी की?

यह एक कड़वा सच है। लेकिन हम प्रबंधकों पर इसलिए अवमानना का मुकदमा नहीं चला सके क्योंकि हमें आन्दोलन चलाने पर ध्यान देना था। इससे भी ज्यादा बाधक बात यह थी कि उच्चतम् न्यायालय में अवमानना का मुकदमा ले जाने का मतलब है कम से कम 50 हजार रूपये का खर्च। जो मजदूर सालों से बेरोजगार हों, जिनके घर में चूल्हा न जल रहा हो, उनके लिए यह रकम इकट्ठी करना आसान नहीं है। दूसरी तरफ हाई कोर्ट में अवमानना के मुकद्दमें बहुत खिंचते है। फिर भी हमने ठेका श्रमिकों को मिल श्रमिक मनवाने के मुद्दे को 5-6 महीने में सुप्रीम कोर्ट में ले जानें की तैयारी की है। वकीलों ने एक लाख का खर्च बताया है। लेकिन इस मामले में हम पीछे नहीं हटेंगे।

आगे की आपकी क्या योजना है?

हम एक बड़ा और व्यापक आन्दोलन चाहते हैं। जरूरी यह है कि मिलें चलें और पुरानी नहीं, नई मजदूरी मिलना शुरू हो। एन०टी०सी० का जो हाल है उसमें अब नौ-दस हजार मजदूरों का भविष्य खतरे में है।

को परामर्श दिया । इसकी प्रतिक्रिया में एन०टी० सी० (उत्तर प्रदेश) के चेयरमैन ने उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में जो याचिका दायर की उसे न्यायालय ने खारिज कर दिया । दरअसल हाई कोर्ट ने प्रबंधकों की याचिका को तीन बार खारिज किया और तीनों बार उसने श्रमायुक्त के विचार से सहमति जाहिर की। इस पर भी गौर करना चाहिए कि म्योर मिल और लक्ष्मी रतन कॉटन मिल के ठेका श्रमिकों को मिल का श्रमिक बनाने व बकाया वेतन देने के उच्चतम् न्यायालय के आदेश के बावजूद उक्त ठेका श्रमिकों को न तो बहाल किया गया और न ही मिल का श्रमिक बनाया गया।

अदालतों का दरवाजा खटखटाने के साथ-साथ मिल मजदूर लगातार वैकल्पिक नौकरियों की तलाश भी करते रहे। लेकिन शायद ही कोई ऐसा मजदूर होगा जिसे श्रम बाजार में कोई सुरक्षा देने वाला रोजगार मिल पाया हो। श्रम बाजार में रोजगार की बदहाल स्थिति इससे उजागर होती है। इस बात की भी अनदेखी नही की जा सकती है कि ठेका श्रमिकों को औसतन 1200 से 1500 रूपये महीने मिलते हैं। छुट्टी होती है लेकिन छुट्टी का पैसा नहीं मिलता और केवल दो अक्टूबर, पन्द्रह अगस्त, दीवाली और ईद को ही सवेतन छुट्टी मिल पाती है। बीमार होने पर कोई पैसा नहीं मिलता। यह जरूर है कि ई०एस०टी० से छुट्टी लेने पर आधा पैसा मिल पाता है।

> ठेका मजदूरों को जब यह लगा कि वे निर्विकल्प हैं और प्रबंधक अपनी श्रमिक विरोधी हठधर्मिता नहीं छोड़ेंगे तो इन मजदूरों ने कपड़ा मिल मजदूर यूनियन के तत्त्वाधान में लड़ो या मरो की लड़ाई के लिए एकजुटता का निश्चय किया।

पूरी स्थिति का एक त्रासद पहलू यह भी रहा कि इन ठेका मजदूरों में लगभग 150 महिलाएं हैं जिनमें से 50 प्रतिशत से ज्यादा मध्यवर्गीय घरों में काम करके गुजारा कर रही हैं। इनमें से ज्यादातर की उम्र 40 और 50 के बीच है।

इस तरह ठेका मजदूरों को जब यह लगा कि वे निर्विकल्प हैं और प्रबंधक अपनी श्रमिक विरोधी हठधर्मिता नहीं छोड़ेंगे तो इन मजदूरों ने कपड़ा मिल मजदूर यूनियन के तत्त्वाधान में लड़ो या मरो की लड़ाई के लिए एकजुटता का निश्चय किया। दरअसल यहीं से जिन्दगी और मौत का एक अनिश्चित संघर्ष शुरू हुआ। इसके लिए यह तय पाया गया कि 540 ठेका मजदूर एन०टी०सी के मुख्यालय के सामने अनिश्चितकालीन धरने पर बैठेंगे। इस धरने के दौरान सात श्रमिकों की भुखमरी और विपरीत परिस्थितियों की वजह से मौत भी हो गयी। लेकिन ठेका मजदूरों ने संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ा। दरअसल इन धरने पर बैठे श्रमिकों के साथ सूती मिलों के अन्य मजदूरों नें अपनी एकजुटता लगातार प्रदर्शित की। धरने पर बैठे मजदूरों को इन्हीं श्रमिकों ने खाने और कपड़े की व्यवस्था की। ठेका मजदूरों की संघर्ष की रणनीति यह थी कि मुख्यालय के मुख्य द्वार को जाम रखा जाय। 6-2-1998 को ये श्रमिक मुख्यालय के परिसर के अन्दर जब घुसे तो वहाँ के सुरक्षा गार्डों ने इन श्रमिकों पर लाठी चलाकर इन्हें लहूलुहान कर दिया। इसके बावजूद श्रमिकों का आन्दोलन जारी रहा। इन श्रमिकों ने रोड जाम जैसी हड़ताली रणनीतियों का बखूबी इस्तेमाल किया। आखिर 18-2-98 को सिटी मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में एन०टी०सी० कानपुर के चेयरमैन ने मिल मजदूर यूनियन के नेताओं से बातचीत की और ठेका श्रमिकों की बहाली व बकाया वेतन पर सहमति दी। इस लड़ाई को जिन मजदूर नेताओं नें एक निश्चित मुकाम तक पहुँचाया उनमें मोनासूर, विजय शंकर, राजकुमार, रामस्वरूप के नाम उल्लेखनीय हैं।

> कहना न होगा कि यह एक ऐतिहासिक लड़ाई थी। इस लड़ाई के सबक साफ हैं और वे ये हैं कि अगर मजदूर एकजुट रहते हैं तो वे लड़कर अपना हक प्रबंधकों से छीन सकते हैं।

कहना न होगा कि यह एक ऐतिहासिक लड़ाई थी। इस लड़ाई के सबक साफ हैं और वे ये हैं कि अगर मजदूर एकजुट रहते हैं तो वे लड़कर अपना हक प्रबंधकों से छीन सकते हैं। कानपुर के मजदूरों के बीच इसे ही आर-पार की लड़ाई कहा जा रहा है। यह भी माना जा रहा है कि कुछ सालों पहले के रेल जाम के बाद यह सबसे बड़ा आन्दोलन था। याद करने की जरूरत है कि के०के० पाण्डेय अवार्ड के विरूद्ध सारे सूती मिल मजदूरों ने भाग लिया था और कानपुर-दिल्ली के बीच 106 घंटे का रेल जाम किया था। कानपुर के

मजदूर 1977 के स्वदेशी गोली काण्ड को नहीं भूले है जब जे०के० जूट और कॉटन मिल के मजदूरों पर जो गोली काण्ड हुआ था उसमें 6 मजदूर मरे थे । कानपुर के सूती मिलं मजदूरों पर दमन उसके बाद ही शुरू हुआ था। वहाँ 250 से 300 लोग भूख से ही मर गये थे।

असल में एन०टी०सी० के 540 ठेका मजदूरों की लड़ाई एक बड़ी लड़ाई का केवल पूर्वाभास ही हो सकती है। जरूरत इस बात की है कि एन०टी०सी० की 125 मिलों के मजदूर-स्थायी और ठेका-दोनों मिलकर कार्रवाई करें। ऐसा करने पर ही एक ओर ठेका प्रथा समाप्त की जा सकेगी और एजेण्डा पर बंद मिलों को चलाने का कार्यक्रम लाया जा सकेगा। देश की सारी सूती मिलों को एक जुट होकर कोई ताल-मेल कमेटी बनाकर संघर्ष छेड़ना चाहिए, यह मत है कपड़ा मिल मजदूर यूनियन के एक वरिष्ट नेता मोनासूर का।

पाँचवी केंद्रीय वेतन आयोग रपट: तथ्य और विश्लेषण

सी०ई०सी० ने हाल में पाँचवे केंदीय वेतन आयोग पर एक पुस्तक प्रकाशित की हैं जिसमें न केवल आयोग की सिफारिशों को सरलतम रूप में रखा गया है बल्कि रपट को लेकर मीडिया में जो बहसें हुई और जिन मुद्दों को लेकर इसका विरोध हुआ, उनका भी शुमार इस किताब में किया गया है। शायद पहली बार वेतन आयोग को लेकर होने वाले धरनों-प्रदर्शनों को कालक्रम से यहाँ दर्ज किया गया है। अंग्रेजी में प्रकाशित इस किताब को इस पते से प्राप्त किया जा सकता है:

सेंटर फॉर एजुकेशन एंड कम्युनिकेशन
173-ए, खिड़की गाँव, मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017

धारूहेड़ा

पुलिस गोलीबारी के बाद

हरियाणा के रेवाड़ी जिले की धारूहेड़ा नाम की जगह में स्थित पशुपति स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स के गेट पर 19 फरवरी को जब छः मजदूरों को पुलिस ने अंधाधुंध गोलीबारी करके मौत के घाट उतार दिया तो एक बार फिर प्रबंधकों, प्रशासन और पुलिस के बीच की श्रमिक विरोधी साठ-गाँठ और उसके दमनकारी नतीजे सामने आ गये। धारूहेड़ा में इस घटना के बाद दहशत और प्रतिरोध की इच्छाओं की मिली-जुली सुगबुगाहट है। धारूहेड़ा की घटना ने न केवल पशुपति स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स के श्रमिकों को एक कर दिया है बल्कि उस पूरे औद्योगिक क्षेत्र के मजदूरों के बीच एकजुटता के अहसास को दृढ़तर कर दिया है।

19 फरवरी की शाम को जब मिल के गेट पर यह श्रमिक विरोधी खून-खराबा हुआ तो पुलिस के दमन की खबर आँधी और तूफान की तरह पूरे धारूहेडा औद्योगिक क्षेत्र में फैल गई जिसका तत्काल नतीजा यह निकला कि 20 फरवरी को सारी औद्योगिक इकाइयों के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। पशुपति मिल्स और आस-पास के हजारहा मजदूर मिल के गेट पर इकट्ठा हो गये और करीब दस हजार श्रमिकों ने प्रदर्शन में हिस्सा लिया । ट्रेड यूनियन काउंसिल, गुड़गांव, ने जो हीरो होंडा वकर्स यूनियन, मारूति उद्योग इम्प्लाइज यूनियन, पुंजाल शोवा इम्प्लाइज यूनियन और कई अन्य यूनियनों का मिला-जुला संगठन है, दमन के प्रतिकार का बीड़ा उठाया। काउंसिल के अध्यक्ष और सांसद गुरूदास दासगुप्ता के नेतृत्व में 27 फरवरी को एक और विरोध प्रदर्शन किया गया। इसी दिन संगठन के प्रतिनिधिमंडल नें राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से मुलाकात की और उनसे हस्तक्षेप की माँग की। गुरूदास दासगुप्ता ने बताया कि मजदूरों की माँग है कि पुलिस गोलीबारी की सी०बी०आई० जाँच होनी चाहिए, मजदूरों के खिलाफ मुकदमें वापस होने चाहिए और गिरफ्तार मजदूर रिहा होने चाहिए, मृत मजदूरों के लिए 5 लाख और घायलों के लिए 1 लाख मुआवजा होना चाहिए और पशुपति मिल्स के मजदूरों की लम्बित माँगे मानी जानी चाहिए।

मजदूरों के विरूद्ध पुलिस दमन की बर्बरता और मजदूरों के बढ़ते आन्दोलन के कारण राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने भी 6 मार्च को यह फैसला किया कि उसका दल धारूहेड़ा में पुलिस गोलीबारी की मौकाई छान-बीन करेगा और इसके आधार पर आगे की कार्रवाई सुझाएगा।

पुलिस दमन के इस हादसे का एक भयावह पक्ष यह है कि जिला प्रशासन दावा कर रहा है कि गोलीबारी में केवल चार मजदूर मारे गये जबकि श्रमिकों का कहना है कि इस घटना में छः मजदूरों को मौत के घाट उतार दिया गया। श्रमिक स्त्रोतों के अनुसार गोलीकांड के समय मिल के अन्दर श्रम विभाग का एक अधिकारी आजाद सिंह चौधरी भी मौजूद था। यह बात भी कही जा रही है कि पशुपति मिल्स के महाप्रबंधक ने भी श्रमिकों पर गोली चलाई थी।

पुलिस की इस बर्बरता में कई श्रमिकों की टाँगों और शरीर के दूसरे हिस्सों पर भी गोलियाँ लगीं। पुलिस और मिल के सुरक्षा कर्मियों ने मृत श्रमिकों के शव मिल के गेट के भीतर खींच लिये थे। श्रमिकों को किसी तरह दो श्रमिकों के शव मिल पाये जिन्हें वे पास की मजदूर बस्ती में ले गये। मजदूरों ने अपना गुस्सा और विरोध दर्ज करने के लिए दिल्ली-जयपुर हाइवे को रोक दिया, लेकिन सुबह साढ़े चार बजे हाइवे पर बैठे मजदूरों की पिटाई शुरू हो गई जिसमें पुलिस ने स्त्रियों और बच्चों को भी नही बख्शा । पुलिस दमन का यह खुला खेल डेढ़ घण्टे तक चलता रहा । इस दौरान पुलिस दो श्रमिकों के शवों को भी उठा ले गई। 20 फरवरी को मजदूरों के प्रतिरोध को योजनाबद्ध तरीके से चलाने के लिए एक संयुंक्त कार्रवाई समिति का गठन किया गया जिसमें पशुपति मिल्स, मारूति उद्योग, हीरोहोण्डा, और सोना स्टीयरिंग के प्रतिनिधि शामिल हुए। समिति ने न्यायिक जाँच, गिरफ्तार मजदूरों की तत्काल रिहाई, मृतकों के परिवारों को पाँच लाख और घायलों के परिवार को एक लाख मुआवजा और भारतीय दण्ड संहिता के अनुरूप महाप्रबंधक की गिरफ्तारी की माँग की।

पशुपति स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स में काफी समय से मजदूरों के बीच असंतोष था । ओम प्रकाश चौटाला के कार्यकाल में 1988 में लोकदल मजदूर संघ के तत्त्वाधान में यहाँ एक यूनियन का गठन किया गया था । सच तो यह है कि यह यूनियन प्रबंधकों के दलालों की तरह काम करती थी और प्रबंधकों की जेब में रहती थी। इस यूनियन ने बिना मजदूरों को भरोसे में लिये प्रबंधकों से समझौता करने का दावा किया था लेकिन हुआ यह था कि इन समझौतों के चलते इन श्रमिकों को असहय कार्य घण्टों को झेलना पड़ता था और भुगतान दयनीय थे। श्रमिकों ने जब उक्त यूनियन की संदिग्ध भूमिका को समझ लिया तो मजदूरों के नेतृत्व में 1997 में बदलाव आ गया। यह स्वाभाविक था कि नया जुझारू नेतृत्व न्यायपूर्ण कार्य घण्टों और न्यायसंगत मजदूरी की माँग बुलंद करेगा। यह मामला उपश्रमायुक्त के सामने आया भी लेकिन प्रबंधकों के श्रमिक विरोधी दृष्टिकोण के कारण कुछ नही हो सका। जुझारू नेतृत्व का नैतिक बल तोड़ने के लिए प्रबंधकों ने श्रमिक नेताओं को निलम्बित कर दिया। दरअसल 19 फरवरी को प्रबंधको का निशाना यह था कि एक ओर मिल में लॉक आउट की घोषणा कर दी जाय तो दूसरी ओर जुझारू मजदूर नेतृत्व को तबाह कर दिया जाय। इसके लिए प्रशासन और पुलिस के साथ गठजोड़ किया गया । दरअसल जाँच के बाद ही पता चलेगा कि इस नापाक गठबंधन की जड़ें किन-किन नौकरशाहों और राजनीतिज्ञों तक फैली हुई हैं।

> दरअसल जाँच के बाद ही पता चलेगा कि इस नापाक गठबंधन की जड़ें किन-किन नौकरशाहों और राजनीतिज्ञों तक फैली हुई हैं।

एटक की ओर से जी० एल० धर, डी० एल० सचदेव और श्रद्धानन्द के जाँच दल ने धारूहेड़ा गोलीकांड पर जो रिपोर्ट तैयार की है उससे पता चलता है कि १९ फरवरी को प्रबंधक बी पाली श्रमिकों से मिल के परिसर को साढ़े पाँच बजे तक खाली करने का हुक्मनामा जारी करते रहे थे और श्रमिकों ने यह समझ लिया था कि मिल का प्रबंधन लॉक आउट घोषित करना चाहता था। प्रबंधकों की इन गैर-कानूनी हरकतों के विरोध में श्रमिक शान्तिपूर्ण तरीके से गेट मीटिंग करने लगे । लेकिन इसी बीच प्रबंधकों ने रेवाड़ी से पुलिस कुमुक मँगा ली और श्रमिकों पर दोषारोपण करने के लिए मिल के सुरक्षाकर्मियों ने टाइम दफ्तर और खड़ी हुई गाड़ियों के शीशे तोड़ डाले। आँसू गैस ओर हवा में गोलियाँ चलाने के बावजूद भी श्रमिक जब गेट मीटिंग करने पर आमादा रहे तो पुलिस ने गोलीबारी शुरू कर दी । कहना न होगा कि यह मीटिंग इकट्ठा होने के बुनियादी अधिकार के तहत ही थी। लेकिन प्रबंधक तो मजदूरों को हिंसक सबक सिखाने की तैयारी किये बैठे थे।

हरियाणा में श्रमिकों के लोकतांत्रिक आन्दोलनों का लगातार दमन हो रहा है। इसके पहले महेन्द्रगढ़ जिले में किसानों के आन्दोलनों पर पुलिस गोलीबारी हुई थी जिसमें कई किसान मारे गये थे।

दे०प्र०मि०

आँखिन देखी

शोषण के आउट हाउसः फार्म हाउस

संजय कुमार मिश्रा

हजारों मजदूर दक्षिणी दिल्ली के महरौली छतरपुर क्षेत्र में फैले फार्म हाउसों में काम कर रहे हैं। हम इन मजदूरों के शोषण से अनभिज्ञ हैं। न्यूनतम मानवाधिकारों की गारंटी के लिए इन मजदूरों की समस्यायें सामने लाना निहायत जरूरी है। दरअसल लगभग पूरे देश में ही नवधनाढ्यों के हाल के उभार के साथ ही फार्म हाउस संस्कृति का विकास तेज़ी के साथ हुआ है। इन फार्म हाउसों की देख-रेख के लिए जिन मजदूरों को रखा जाता है, यह रिपोर्ट एक तरह से उन सब की बदहाली पर सोचने के उपकरण मुहैय्या कराती है।

जीवन-यापन के लिए किसी भी काम की तलाश में रामनारायण कोई 10 साल पहले दिल्ली आया था। उसने फार्म हाउस में 750 रूपये महीने पर काम शुरू किया। पिछले 10 सालों से वही काम लगातार करने के बाद भी आज उसे केवल 1350 रू० मिलते हैं। वह स्थायी श्रमिक की श्रेणी में नही आता और न ही उसके पास अपनी नौकरी का किसी किस्म का कोई प्रमाण है। रामनारायण हमेशा डरा रहता है कि उसे कभी भी बगैर नोटिस के नौकरी से निकाला जा सकता है। वह पूरी तरह अपने मालिक की दया पर निर्भर है। उसे सप्ताह में एक दिन का अवकाश भी हासिल नहीं है और आज भी जब वह कुछ दिनों के लिए गाँव जाता है तो उसका वेतन काट लिया जाता है। रामनारायण इस बात से अनभिज्ञ है कि दिल्ली के न्यूनतम मजदूरी कानून के तहत 1676 रूपये मासिक से कम भुगतान गैर-कानूनी है।

छतरपुर महरौली इलाके के फार्म हाउसों में हजारों की संख्या में कार्यरत मजदूरों के अनुभव रामनारायण से अलग नहीं हैं। इन फार्म हाउसों के मालिक आम तौर पर बड़े व्यवसायी, प्रभावशाली नौकरशाह और राजनीतिज्ञ हैं। लम्बे-चौड़े लॉनों के बीच बने ये भव्य महल आम तौर पर अमीरों के आरामगाह के रूप में विकसित किए जाते हैं । साथ ही ये बड़े पैमाने पर गैर कानूनी कमाई को जमीन में लगाने का भी तरीका हैं।

किसी व्यापक सर्वेक्षण के अभाव में फार्म हाउसों व उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या के बारे में एक मोटा अनुमान ही लगाया जा सकता है। ट्रेड यूनियनों के अनुसार यहाँ 2,000 से भी ज्यादा फार्म हाउस हैं तथा मजदूरों की संख्या 10 से 15 हजार है। इन फार्म हाउसों में चौकीदार, माली, सहायक, बिजली मिस्त्री का काम करने वाले ज्यादातर मजदूर प्रवासी हैं जो बिहार, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के रहने वाले हैं।

यहाँ के मजदूरों के लिए किसी भी किस्म का श्रम अधिकार एक सपना है। किसी की नौकरी स्थायी नही है और ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ मजदूर 8-10 साल की लगातार सेवा के बाद भी बिना किसी अग्रिम नोटिस और मुआवजे के नौकरी से बाहर निकाल दिये जाते हैं। इन मजदूरों के लिए कोई उपस्थिति रजिस्टर नहीं होता और न ही मासिक वेतन की रसीद दी जाती है। ऐसी स्थिति में फार्म हाउस पर काम करने वालों के पास एकमात्र प्रमाण फार्म हाउस के पते पर उनके नाम से आई चिट्ठियाँ ही होती हैं।

फार्म हाउस के प्रभावशाली मालिकों ने यहाँ के मजदूरों को श्रम कानून के दायरे से पूरी तरह बाहर रखा है। यहाँ एक अकुशल श्रमिक 800 से 1500 रूपये मासिक वेतन पाता है। यह न्यूनतम मजदूरी कानून का पूरा उल्लंघन है। फार्म हाउस मालिक

ताकतवरों की आरामगाह में मजदूरों की मौत

दक्षिण पश्चिम दिल्ली में आने वाले बिजवासन और राजोक्री इलाकों में स्थित फार्म हाउसों पर 21 और 22 फरवरी 1998 को जब कुछ अज्ञात अपराधियों ने धावा बोला तो इन वारदातों में चार श्रमिकों की मौत हो गई और लगभग 30 मजदूर घायल हो गये। मजदूरों को बहुत बेरहमी से पीटा गया था। किलों की तरह बनाये गये फार्म हाउसों में घुस जाने के बाद घुसपैठ करने वालों ने मुख्य आवास या उसमें रहने वालों पर हमला नहीं किया। साफ है कि हमलावरों का निशाना मजदूर थे।

हमलों के शिकार मजदूरों के प्रति सरकार और फार्म हाउस मालिकों की उदासीनता और सरोकारहीनता, सरकारी अस्पताल में घायल मजदूरों के साथ कथित दुर्व्यवहार, पुलिस और फार्म हाउस मालिकों के बीच आरोप प्रत्यारोप और पुलिस द्वारा फार्म हाउस मालिकों को बन्दूक के लाइसेंस बाँटने का निर्णय- इन सारे तथ्यों के चलते एक तथ्यानिवेषी दल गठित किया गया। उसने यह तय किया कि वह इन श्रमिकों के काम करने और रहने के हालात की जाँच ही नही करेगा। बल्कि हाल के हमलों की घटनाओं के सम्भावित परिणामों की पड़ताल भी करेगा।

तथ्यानिवेषी दल में हिन्द मजदूर सभा के आर०के० मित्तल, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के असगर अली खाँ, दिल्ली कामगार दल के मथुरा प्रसाद चौधरी, सेन्टर फॉर एजुकेशन एण्ड कम्युनिकेशन के सुपर्ण लाहिड़ी और पत्रकार संजय मिश्रा थे।

यह दल 26 और 27 फरवरी को लगभग आठ फार्म हाउसों में गया जहाँ उसने घायल श्रमिकों से बातचीत की। बाद में यह दल सफदरजंग अस्पताल गया जहाँ उसने कुछ जिला पुलिस अधिकारियों से मुलाकातें कीं। इस तथ्यानिवेषी दल ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित प्रमुख तथ्यों का उल्लेख किया:

1 फार्म हाउसों में रहने वाले श्रमिक पूरी तरह से डरे हुए हैं और उनमें से कई या तो अपने गाँवों को लौट रहे हैं या वैकल्पिक रोजगार ढूँढ रहे है। निरूला फार्म हाउस में रहने वाले कुछ ऐसे मजदूर भी हैं जिन्होनें आस-पास के गाँव में किराये की जगहें ले ली हैं।

2 चूँकि श्रमिकों की ओर से कोई हस्तक्षेप करने वाला नहीं था और फार्म हाउस मालिकों ने किसी तरह की तात्कालिकता नहीं दिखाई तो हुआ यह कि सफदरजंग अस्पताल के आपात्कालीन वार्ड में सांघातिक रूप से घायल मजदूरों पर लगभग कोई ध्यान नहीं दिया गया। जिन मजदूरों को मरणान्तक चोटें आई थी उन्हें भी रफा-दफा कर दिया गया।

3 दल को ऐसी कोई सूचना नही मिली कि मृत या घायलों के परिवार को क्या मुआवजा दिया जा रहा है। इस मामलें में दिल्ली सरकार या पुलिस की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा रहा है।

4 प्रभावित फार्म हाउसों के श्रमिकों की हालत बहुत बुरी है। निरूला जैसे परिवारों के पास इतना भी समय या संवेदना नहीं है कि वे मजदूरों का मौखिक हाल ही पूछ लें। मालिकों ने घायल मजदूरों को समुचित चिकित्सा सुविधायें भी उपलब्ध नहीं करवाई और कुछ घायल श्रमिकों को तो फार्मों में काम करते हुए भी देखा गया।

5 फार्म हाउसों में श्रमिकों का कोई रोजगार सम्बंधी रिकार्ड नहीं हैं । यहाँ न तो काम करने का रजिस्टर होता है, न नियुक्ति पत्र, न पे स्लिप और न फार्मों में काम करने का कोई प्रमाण पत्र ।

6 मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी कानून के तहत भुगतान नही किया जाता । उन्हें दिल्ली सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से भी बहुत कम दिया जाता है। उनका साप्ताहिक अवकाश नहीं होता, सवेतन अवकाश नही होता और प्रॉविडेण्ट फण्ड तथा ई०एस०आई जैसे सामाजिक सुरक्षा लाभ नहीं होते।

7 फार्म हाउसों में पर्याप्त सुरक्षा प्रबंध नहीं हैं। इसकी वजह शायद यह है कि फार्मों के मालिक यहाँ कभी-कभी ही आते हैं। और उनकी मूल्यवान वस्तुएँ यहाँ नहीं रखी जाती हैं। इस सबके चलते मजदूर हमलावरों का निशाना बन जाते हैं।

फार्म हाउस के श्रमिकों पर हुई हमले की इन घटनाओं ने इस जरूरत की ओर इशारा किया है कि मजदूर संगठनों, मजदूरों के हितों से जुडी संस्थाओं को इन मजदूरों की समस्याओं को अपनी गतिविधियों और एजेण्डा में शामिल करना होगा। अलग-थलग पड़े इन मजदूरों को अपराधियों की नृशंसता, पुलिस की उदासीनता और मालिकों की अमानवीयता के हवाले नहीं किया जा सकता।

अपनी मर्जी के मुताबिक मजदूरों का वेतन तय करते हैं। नये मजदूरों का शोषण होता है क्योंकि उनसे कम से कम मजदूरी पर काम करवाने की कोशिश की जाती है। दिल्ली के बाहर से आने वाले मजदूरों की लगातार उपलब्धता बने रहने से मालिकों के

लिए यह और भी आसान हो जाता है।

फार्म हाउसों में काम के घंटे भी स्पष्ट तरीके से तय नहीं होते हैं। एक मजदूर को आमतौर पर दोहरी जिम्मेदारी दी जाती है। उसे चौकीदारी के लिए नौकरी पर रखा जाता है, पर उससे बागवानी का काम भी करवाया जाता है। जो मजदूर फार्म हाउस में ही रहते हैं उनका और भी ज्यादा शोषण होता है क्योंकि जब भी मालिक फार्म पर होते हैं, मजदूरों को उनकी सेवा में उपस्थित रहना पड़ता है। बगैर किसी अतिरिक्त पैसे के यहाँ मजदूर आठ घंटे से ज्यादा काम करते हैं। देर रात तक फार्म-हाउसों में चलने वाली पार्टियों के कारण मजदूर अक्सर ही ज्यादा काम करते हैं।

जिन मजदूरों को फार्म हाउस के अन्दर रहने की अनुमति मिलती है वे आमतौर पर फार्म के किसी कोने में टीन की छत वाली झोपड़ियों में रहते हैं। इन झोपड़ियों में मजदूरों को मौसम के थपेड़े झेलने पड़ते हैं, पर मालिक के लिए यह सुविधा होती है कि मजबूर हमेशा फार्म हाउस पर मौजूद होता है। बागवानी व खेती के काम के लिए मजदूरों को कोई सुरक्षा उपकरण नही दिया जाता व काम करते हुए घायल होने पर मजदूरों को अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है।

यहाँ के मजदूरों के लिए किसी भी किस्म का श्रम अधिकार एक सपना है। किसी की नौकरी स्थायी नही है और ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ मजदूर 8-10 साल की लगातार सेवा के बाद भी बिना किसी अग्रिम नोटिस और मुआवजे के नौकरी से बाहर निकाल दिये जाते हैं।

फार्म हाउसों के मजदूरों के अपने राशन कार्ड नहीं होते क्योंकि फार्म हाउस मालिक मजदूरों की स्थायी पहचान की कोई गारंटी नहीं करते हैं। दिल्ली में वर्षों तक रहने व काम करने के बावजूद ये मजदूर राशन दुकानों में उपलब्ध सस्ते खाद्यान्न और किरासन तेल, आदि सुविधाओं से वंचित रहते हैं। सरकारी महकमें इन मामलों में फार्म हाउस मजदूरों की बात सुनने से ही इंकार करते हैं।

फार्म हाउस मजदूरों के बीच ट्रेड यूनियन की शुरूआत हाल के दिनों में ही हो पाई है। ' 90 के दशक के शुरूआती सालों तक इन मजदूरों के बीच कोई ट्रेड यूनियन गतिविधि नहीं थी। अब भी फार्म हाउस मजदूरों की बहुसंख्या इस प्रयास के दायरे से बाहर है। असंगठित क्षेत्र के मजदूर को संगठित करने की आम दिक्कतों के साथ-साथ फार्म हाउस क्षेत्र की खास स्थिति से भी ट्रेड यूनियन गतिविधियों के विकास में मुश्किलें आई हैं।

फार्म हाउस मजदूरों के संगठन की एक बड़ी बाधा यहाँ मजदूरों का बिखराव है। एक फार्म हाउस में काम करने वाले मजदूरों की औसत संख्या 6 से ज्यादा नही है। काफी फार्म ऐसे भी है जहाँ केवल 2 मजदूर ही काम करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जहाँ काम करने वालों की संख्या 15-20 है। इन फार्म हाउसों का बहुत बड़े इलाके में फैलाव भी मुश्किलें पैदा करता है। फार्म हाउस के मालिक आम तौर पर कही और रहते हैं जिससे मजदूरों के सामने ये दिक्कतें आती हैं कि वे अपनी माँगें किसके सामने रखें। फार्म हाउसों का शहर से दूर ग्रामीण इलाकों में स्थित होना भी मजदूरों के लिए मुश्किलें पैदा करता है क्योंकि ऐसे इलाकों में जाने से श्रम विभाग के अधिकारी भी कतराते हैं तथा स्थानीय गुंडों द्वारा डरा-धमका कर मजदूरों से काम कराना भी आसान है। मजदूरों की स्थिति ज्यादा कमजोर इसलिए भी है कि वे अधिकतर प्रवासी हैं ।

ए०आइ०टी०यू०सी० से सम्बंधित अखिल भारतीय जनरल मजदूर यूनियन व दिल्ली कामगार दल ने फार्म हाउस मजदूरों के संगठन के लिए सराहनीय पहल की है। संगठन ने ऐसे मजदूरों के लिए संघर्ष किये जिन्हें बिना कारण नौकरी से हटा दिया गया और कोई मुआवजा नही दिया गया। ऐसे कुछ मामलों में यूनियन के हस्तक्षेप से मजदूरों को मुआवजा भी मिल पाया और इसका असर दूसरे फार्म हाउस मालिकों पर भी पड़ा। संगठन ने न्यूनतम मजदूरी, अवकाश , स्थायी नौकरी, उपस्थिति रजिस्टर, भविष्य निधि जैसी माँगें भी उठानी शुरू की हैं और श्रम विभाग पर यह दबाव भी बनाया कि वह फार्म हाउसों का सर्वेक्षण कर मजदूरों की स्थिति पर रिपोर्ट जारी करें। इस दबाव के कारण श्रम विभाग ने कुछ फार्म हाउसों की जाँच-पड़ताल की जिनमें यूनियनों की ज्यादातर शिकायतें सही पाई गईं।

यूनियनों के प्रयासों से यह बात सामने आई है कि फार्म हाउस मजदूर एक ऐसी श्रेणी है जिसके संबंध में कानूनों में एक अस्पष्टता बनी हुई है। विभिन्न श्रम कानूनों में से कोई भी फार्म हाउस मजदूरों के लिए लागू नही होता रहा है क्योंकि मजदूरों

की यह श्रेणी श्रम विभाग के अधिकारियों के लिए कोई मायने ही नही रखती थी। इन्हें आमतौर पर ' घरेलू नौकर ' की श्रेणी में रखा जाता है, और मजदूर यूनियनों और आम मजदूरों के लम्बे समय के प्रयास के बाद आज फार्म हाउस मजदूर श्रम विभाग व श्रम विवाद निपटारे की प्रक्रिया में अपने लिए थोड़ी जगह बना पाये हैं। आज उन्हें ' घरेलू नौकर ' कहकर दरकिनार नही किया जा सकता। मजदूर संघर्षों का अनुभव यह बताता है कि महज कानूनी हक हासिल हो जाने से मजदूरों की स्थिति नहीं बदलती । पर कानून अपने अधिकारों के संघर्ष को आगे बढ़ाने में मजदूरों के हाथ में कारगर हथियार बनते हैं। इस संदर्भ में फार्म हाउस मजदूरों को श्रम कानूनों के दायरे में लाने का संघर्ष खास महत्त्व रखता है।

यूनियनों के प्रयासों से यह बात सामने आई है कि फार्म हाउस मजदूर एक ऐसी श्रेणी है जिसके संबंध में कानूनों में एक अस्पष्टता बनी हुई है। विभिन्न श्रम कानूनों में से कोई भी फार्म हाउस मजदूरों के लिए लागू नही होता रहा है क्योंकि मजदूरों की यह श्रेणी श्रम विभाग के अधिकारियों के लिए कोई मायने ही नही रखती थी।

फार्म हाउस मजदूरों के बीच सक्रिय मजदूर यूनियनों को अपनी कुछ कमजोरियाँ भी दूर करनी होंगी। यहाँ काम करने वाले मजदूरों के व्यापक समूह से जुड़े सवाल उठाकर उन के आधार पर संघर्ष की बजाय अलग-अलग मजदूरों की समस्याओं पर अपने को केन्द्रित करना ऐसी ही एक गम्भीर कमजोरी है। यूनियनें कुछ मजदूरों को उनका हक दिलवाने से आगे फार्म हाउस मजदूरों की समस्याओं का स्थायी हल हासिल करने की दिशा में कोई ज्यादा सफलता नही हासिल कर पाई हैं। इसलिए आज भी फार्म हाउसों में मजदूरों का उपस्थिति रजिस्टर नही रखा जाता, अवकाश का प्रावधान नहीं है और वेतन की रसीद नहीं दी जाती है। फार्म हाउस क्षेत्र में काम करने वाले सभी मजदूरों के लिए श्रम कानूनों की वैधता स्वीकार कराना और उस पर अमल कराना आज इस क्षेत्र की एक अहम जरूरत है।

श्रमजीवी के पाठक बनें

हमारा प्रयत्न श्रमजीवी को एक सार्थक हस्तक्षेप बनाने का है लेकिन सीमित संसाधनों के चलते इस प्रयास को पाठकों के सहयोग के बिना आगे नही बढ़ाया जा सकता । श्रमजीवी के प्रकाशन को नियमित और सुचारु बनाने के लिए हम पाठकों से सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

सहयोग राशि है:

एक प्रति: 12 रूपये

वार्षिक: 40 रूपये

विश्लेषण

कैसे तय हो न्यूनतम मजदूरी?

प्रीत रस्तोगी व एम० बी० श्रीनिवासन

" कई ठोस सुझावों के बावजूद न्यूनतम मजदूरी तय करने के मामले में अनिश्चितता बनी हुई है। इसकी वजह से हम मानवीय तरीके से न तो जी पाते हैं, न ही काम कर पाते हैं । "

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के बाद से ही एक वैधानिक न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था रही है। इस न्यूनतम मजदूरी का मतलब उस रकम से है जिसे किसी भी मालिक को मजदूरों के काम के लिए देना ही चाहिए। खास तौर पर उस हालत में कि जब वे बाजार में निचले दर्जे के मजदूर हों । पर इतने सालों के बाद भी जिन सवालों पर अब भी पूरी सहमति नही हुई है, वे हैं: (क) न्यूनतम मजदूरी है क्या, और (ख) किस तरह से इसे तय किया जाये?

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के तहत विधायिका ने जो हस्तक्षेप किया, उसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि मजदूरों को बेहद कम मजदूरी के अन्याय से बचाया जाये। मजदूरों की बहुतायत वाली अर्थव्यवस्था में यदि बाजार की शक्तियों को बेलगाम छोड़ दिया जाये तो मजदूरी के भुगतान के मामले में मजदूरों का भारी शोषण हो सकता है। इस तरह कम से कम मजदूरी की तजवीज वह औजार है जिसके जरिए भारत के हर आदमी को एक तयशुदा न्यूनतम मजदूरी दिलवा कर गरीबी का कहर कम किया जा सकता है।

ऐतिहासिक रूप से यह प्रक्रिया अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा 1928 में आयोजित न्यूनतम मजदूरी तय करने संबंधी मशीनरी कनवेंशन संख्या 26 से शुरू हुई। इसके बीस साल बाद भारत सरकार ने भी इस अधिनियम को अधिसूचित किया जिसमें अन्य बातों के साथ -साथ ज्यादा शोषण वाले उद्योगों के लिए न्यूनतम मजदूरी और संगठित क्षेत्रों में समुचित मजदूरी संबंधी समझौतों को कानूनी रूप देने की कोशिशें की गयीं। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948) में शुरू में 13 रोजगारों को शामिल किया गया था और केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों को यह आजादी दी गयी थी कि वे इस सूची में कुछ और रोजगार जोड़ सकते हैं।

पारिभाषिक और अवधारणात्मक मुद्दे

इस अधिनियम में उपयुक्त सरकार, मालिक, वयस्क, किशोर, जीवन सूचकांक का खर्च, अनुसूचित रोजगार, मजदूरी, और मजदूर जैसे कई पदों की परिभाषाएं दी गयी हैं। फिर भी मजे की बात यह है कि इसमें न्यूनतम मजदूरी की ही परिभाषा गायब है। इस अधिनियम की धारा 4 में यह कहा गया है कि अधिसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी तय करने या उसमें बदलाव लाने में उपयुक्त अधिकारी निम्न बातों का ध्यान रखेगा:

1. मजदूरी की एक बुनियादी दर और एक विशेष भत्ता जो समुचित सरकार के फैसले के आधार पर मजदूरों के लिए प्रभावी निर्वाह व्यय सूचकांक में परिवर्तन के साथ बदलता रहेगा ।
2. मजदूरी की एक बुनियादी दर जिसमें निर्वाह भत्ता हो या ना भी हो, पर अनिवार्य वस्तुओं की आपूर्ति की नकद भरपाई हो।
3. या , बुनियादी दर, निर्वाह भत्ता और रियायतों का नकद मूल्य, सब-कुछ मिला-जुलाकर एक असली दर तय हो। इनके

अलावा, विभिन्न समितियों और आयोगों, मंत्रालयों के सम्मेलनों, अध्ययन दलों, सलाहकार बोर्डों , त्रिपक्षीय समझौतों और अदालती फैसलों से सम्बंधित रपटों को भी इसी अधिनियम में शामिल किया गया है और न्यूनतम मजदूरी तय करते वक्त इनकी तजवीजों का खयाल रखा जाता है। इसके अलावा न्यायसंगत मजदूरी संबंधी समिति, भारतीय श्रम सम्मेलन, केन्द्रीय वेतन आयोग कन्वेंशन, ग्रामीण श्रम और कृषि पर राष्ट्रीय आयोगों की रिपोर्ट, श्रम नीति संबंधी समिति, सचिवों की समिति, अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन मजदूरी संबंधी अध्ययन दल, आय एवं खर्च तथा न्यूनतम मजदूरी संबंधी सलाहकार बोर्ड, आदि ने भी न्यूनतम मजदूरी तय करने के मापदंडों को काफी प्रभावित किया है।

न्यायसंगत मजदूरी समिति, 1949 ने इस बात का अध्ययन किया था कि कम से कम मजदूरी कितनी होनी चाहिए ताकि अर्थ व्यवस्था वर्तमान वृद्धि दर पर टिकी रहे। कर्मचारियों और मालिकों के साथ बातचीत के बाद समिति इस नतीजे पर पहुँची थी कि न्यूनतम मजदूरी उतनी होनी चाहिए जिससे न सिर्फ मजदूर का जीवन चलता रहे, बल्कि उसकी दक्षता और ताकत भी बनी रहे। दूसरे शब्दों में, न्यूनतम मजदूरी में आधारभूत शिक्षा, दवा और अन्य सुविधाएं भी शामिल माननी चाहिए। इस प्रकार न्यायसंगत मजदूरी की निचली सीमा तो न्यूनतम मजदूरी होनी चाहिए और ऊपरी सीमा उद्योग की भुगतान करने की शक्ति और आम तौर से प्रचलित मजदूरी ढाँचा और उत्पादकता की हालत के मद्दे नजर तय की गयी वह निर्वाह मजदूरी होगी जिसमें मजदूरों के लिए हल्के फुल्के-आराम की भी व्यवस्था हो। इसे तय करने के लिए उद्योगों के स्थान , राष्ट्रीय आमदनी और इसके बँटवारे जैसी बातों का ख्याल रखना भी जरूरी है। ये गणना तीन व्यक्तियों से बने एक मानक परिवार की जरूरत को ध्यान में रख कर की गयी थी।

इन समितियों के काम-काज के आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय करने के सम्बन्ध में सिद्धांतों का एक खाका तैयार हो जाता है जिसकी मुख्य बातें हैं: (क) न्यूनतम मजदूरी की रकम उतनी तो कतई नही होनी चाहिए जिससे कोई मजदूर किसी कंगाल या गरीब जैसा जीवन जीने को लाचार हो ।

(ख) कम से कम मजदूरी को ' न्यूनतम जीवन यापन मजदूरी ' भी कहा जा सकता है।

(ग) इस न्यूनतम जीवन यापन मजदूरी की रकम इतनी तो होनी ही चाहिए कि मजदूरों और कामगारों की कार्य क्षमता और दक्षता बनी रहे।

(घ) इसमें सेहत और बच्चों के तालीम की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

इन सिद्धान्तों का मतलब है कि न्यूनतम मजदूरी वास्तव में वह रकम है जिससे कम मजदूरी किसी को भी नहीं मिलनी चाहिए क्योंकि इसका असर उनकी कार्यक्षमता और दक्षता पर पड़ेगा।

1991 में न्यूनतम मजदूरी सलाहकार बोर्ड ने सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी को उत्पादकता के साथ जोड़ा जाना चाहिए और उपयुक्त सरकार जहाँ भी संभव हो, इसकी दर तय कर सकती है। न्यूनतम मजदूरी तय करते वक्त इन्हीं समितियों की रिपोर्टों और ऐसे ही प्राधिकारियों के बीच हुई आम सहमति को मानदण्ड माना जाता है । न्यूनतम मजदूरी की गणना करने के तौर तरीकों को तय करके इसके मुख्य अवयवों या पहलुओं की पहचान करने का काम भारतीय श्रम सम्मेलन के 15वें सम्मेलन में किया गया। एक त्रिपक्षीय संस्था की सिफारिशों के आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय करते वक्त रोटी, कपड़ा और मकान और अन्य बुनियादी सुविधाओं का भी ध्यान रखने जैसे ठोस सुझाव दिये गये थे । परन्तु भारत सरकार ने इसे बहुत ज्यादा समझकर नकार दिया है।

न्यूनतम मजदूरी तय करना

न्यूनतम मजदूरी तय करने का वास्तविक काम न्यूनतम मजदूरी सम्बंधी समिति, वेतन बोर्ड या निर्णायकगण करते है। हालाँकि संसद में यह घोषणा की गयी थी कि 15वें भारतीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशें पूरे तौर पर नही मानी जा सकती हैं, फिर भी सरकारी सेवाओं और औद्योगिक क्षेत्र में वेतन निर्धारण के लिए गठित आयोग और वेतन बोर्ड इस उपर्युक्त मापदंड को ही अपना असली आधार मानते हैं।

1948 के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के बाद से कम से कम मजदूरी तय करने का सारा काम अब सरकार के जिम्मे आ गया है। सरकार द्वारा इसका अनुमोदन बेहद जरूरी है। स्वाभाविक है कि ऐसी हालत में सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी की रकम

तय करने की कोशिशों को बेहतर स्वीकृति मिलेगी । इस ओर सरकार ने कोशिशें भी की हैं। उसने खास संस्थाओं का गठन किया। 1947 में इसकी शुरूआत केंद्रीय वेतन आयोग गठित करके की गयी थी। इस आयोग की रिपोर्ट काफी महत्वपूर्ण थी क्योंकि यह रिपोर्ट न्यायसंगत मजदूरी समिति और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के पहले आ गयी थी। उस समय के अनुसार समिति के प्रतिवेदन की बातें विवेकसम्मत ही मानी जायेंगी। समिति ने यह कहा था कि न्यूनतम मजदूरी गैर कुशल मजदूरों के लिए होती है। साथ ही यह भी कि ' इस मजदूरी की मेहनत के बाजार भाव पर ध्यान नही दिया गया है'। ये शब्द काफी अर्थ भरे हैं। वास्तव में उस समय जो भी कम से कम मजदूरी प्रचलित रही होगी, वह अपर्याप्त ही रही होगी और निश्चय ही न्यूनतम मजदूरी जीवन-यापन स्तर से नीचे ही रही होगी । यानी गरीबी के स्तर पर। इस प्रकार वेतन आयोग ने गैर कुशल मजदूरों का न्यूनतम जीवन स्तर तय करते वक्त बाजार भाव के सिद्धांत को नकार दिया।

1957 में हुए 15वें भारतीय श्रम सम्मेलन में पोषण संबंधी जरूरतों को भी शामिल करने की बात पहली बार उठायी गयी। इसने जरूरत पर आधारित न्यूनतम मजदूरी तय करने के साथ -साथ उन पाँच अन्य मानदंडों को भी रखा जिन पर विभिन्न वेतन निर्धारक प्राधिकारियों के बीच आम सहमति थी। ये हैं:

1. एक अच्छे कामगार परिवार में एक कमाने वाले पर तीन खाने वाले व्यक्ति को निर्भर माना जाना चाहिए। महिलाओं, बच्चों और किशोरों की कमाई इसमें शामिल नही करनी चाहिए।
2. कम से कम भोजन या खाद्य आवश्यकता का आँकलन कुल 2700 कैलोरी के ग्रहण के आधार पर होना चाहिए। डा० ऑक्रॉयड ने एक सामान्य कामकाज करने वाले भारतीय के लिए इसे जरूरी माना है।
3. कपड़े की जरूरतों का भी अंदाजा लगाया जाना चाहिए। एक व्यक्ति के लिए हर साल 18 गज कपड़े के हिसाब से 4 व्यक्तियों के परिवार की खातिर 72 गज कपड़े की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. मकान के मामले में किसी भी इलाके में निम्न आय वर्ग के औद्योगिक आवास योजना के तहत दिए गये मकानों के लिए सरकार जितना किराया लेती हो, उसे आधार माना जाना चाहिए।
5. ईंधन, प्रकाश एवं अन्य विविध मदों में खर्च के लिए कुल न्यूनतम मजदूरी का बीस प्रतिशत अलग से मिलना चाहिए। फिर उच्चतम न्यायालय ने अपने एक फैसले ' रेप्टाकॉस ब्रेट एण्ड कम्पनी बनाम प्रबंधक, 1992 ' में एक और नई चीज जोड़ी ।
6. उच्चतम न्यायालय का मानना यह भी था कि बच्चों की तालीम, दवा, त्योहार, मनोरंजन, बुढ़ापे और विवाह के लिए भी कुल न्यूनतम मजदूरी का 25 प्रतिशत अलग से मिलना चाहिए । 15वें भारतीय श्रम सम्मेलन के अनुसार आम तौर से सक्रिय और सामान्य कद के भारतीय के लिए, डा० ऑक्रॉयड के मुताबिक, 2700 कैलोरी निहायत जरूरी है। इसलिए इतनी ऊर्जा देने वाला भोजन तो चाहिए ही और इसी को समुचित आहार कहा जा सकता है। उपर्युक्त समुचित आहार को ध्यान में रखते हुए 2700 कैलोरी दे पाने वाले भोजन में अनाज, दाल, सब्जी, दूध, चीनी, गुड़, तेल, घी, फल एवं मछली और मांस व अंडों का होना जरूरी है। अब इस जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी को रकम के रूप में परिवर्तित करते वक्त वेतन निर्धारक प्राधिकारियों के सामने दो प्रमुख विवादास्पद मुद्दे उभरते हैं। एक तो यह कि जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी के लिए कितने कैलोरी को आधार माना जाये और दूसरा यह कि आहार में किन-किन चीजों को शामिल किया जाये। इस मामले में खुद पोषण विशेषज्ञों में कोई एक राय नहीं थी। एक विवाद इसलिए भी हुआ कि गरीबी की रेखा के आकलन, सेहत सम्बंधी लक्ष्यों के निर्धारण और वेतन तय करने जैसे दूसरे आर्थिक उद्देश्यों के लिए भी पोषण सम्बंधी मानदंडों को ही आधार बनाया गया।

> **उच्चतम न्यायालय का मानना यह भी था कि बच्चों की तालीम, दवा, त्योहार, मनोरंजन, बुढ़ापे और विवाह के लिए भी कुल न्यूनतम मजदूरी का 25 प्रतिशत अलग से मिलना चाहिए ।**

दूसरे वेतन आयोग और अन्य दूसरे वेतन बोर्डों ने भी डा० ऑक्रॉयड की समुचित आहार सम्बंधी तजवीज को सही माना। यहाँ यह भी गौरतलब है कि उच्चतम न्यायालय ने पाँचवे भारतीय श्रम सम्मेलन के 15वें अधिवेशन में तय तरीकों को जायज करार दिया था। इस प्रकार विभिन्न अधिकारियों के लिए अब यह बाध्यकारी हो गया है कि वे तीन इकाइयों के परिवार के लिए प्रति व्यक्ति 2700 कैलोरी की जरूरत का खयाल रख कर ही कुछ तय करें। फिर भी, यह दुखद है कि इस तरह की कोई आम सहमति समुचित आहार के अवयवों पर नही बन पायी है। विभिन्न अवयवों का चुनाव करके विभिन्न तरीके से विशेषज्ञों ने संतुलित भोजन के लिए आवश्यक जिस रकम की तजवीज की है वह वास्तव में 1317 रूपये प्रति माह से 2074 रूपये प्रति माह के बीच हिचकोले खा रही है।

विभिन्न प्राधिकारियों ने 31 अक्टूबर, 1996 की कीमतों के आधार पर भोजन सामग्रियों के विभिन्न अवयव जोड़ते हुए जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी चार्ट बनाया है। वह है:

क्रम सं०	प्राधिकारी का नाम	रकम रू० में
1.	डा० ऑक्रॉयड का संतुलित आहार	2074
2.	दूसरे वेतन आयोग का आहार	1317
3.	सीमेंट वेज बोर्ड का आहार	1332
4.	आयरन एण्ड स्टील वेज बोर्ड का आहार	1332
5.	कोलमाइनिंग वेज बोर्ड आहार	1333
6.	पटवर्धन और रंगकाथनक आहार	1332

इन आँकडों में इतनी ज्यादा भिन्नता इसलिए आयी क्योंकि डा० ऑक्रॉयड को छोड़कर किसी ने भी आहार में फल, मछली, मांस और अंडा, आदि शामिल नही किया था। वास्तव में आहार चार्ट खर्च कम करने के लिए बनाया गया था और उसमें सामानों के दाम कम करके जोड़े थे। मसलन बहुत ही कम आहार मूल्य पैदा करने के लिए राष्ट्रीय श्रम आयोग ने कम्प्यूटर के लीनियर प्रोग्रामिंग की भी मदद ली।

दूसरे वेतन आयोग ने न्यूनतम मजदूरी 75 रुपये तय की थी, हालाँकि उस समय मुद्रा स्फीति बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। उस समय आयोग के पास ऐसी अर्जियाँ गयी थीं कि वह जरूरत आधारित न्यूनतम मजदूरी पर विचार करे और भारतीय श्रम सम्मेलन के 15वें अधिवेशन की सिफारिशों के मद्दे नजर इसे 110 से 137 रू० के बीच रखें। कोई भी वेतन ढाँचा जिसे उपर्युक्त छह मानदंडों का जरा भी ध्यान रखते हुए बनाया जायेगा, उसमें इतनी रकम तो आ ही जायेगी कि जीने-रहने की न्यूनतम जरूरतों को साधा जा सके। कोई भी रोजगारदाता यदि यह तर्क देता है कि वह इतनी सी रकम भी नही दे सकता है तो इसका मतलब यह है कि उस उद्योग को चलते रहने का कोई हक नहीं है। जो उद्योग अपने मजदूर को जीवनयापन के लिए जरूरी न्यूनतम रकम भी नही दे सकता है, उसे बने रहने का अधिकार कैसे दिया जा सकता है।

अदालतों ने अपने फैसले में कई बार यह कहा है कि अधिनियम के तहत तय की गयी न्यूनतम मजदूरी का भुगतान हर हाल में होना चाहिए, चाहे रोजगारदाता में देने की ताकत हो या न हो। वैसे भी जब तक भारत सरकार राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों

का पालन करती रहती है, तब तक अफसरशाही और अदालत भी इसके अनुकूल काम करेंगे। इतना सब कुछ होने के बाद भी आलम यह है कि एक सीमा के बाद संगठित क्षेत्र के मजदूर भी मोलभाव की सारी ताकत के बावजूद अपनी खातिर अच्छी मजदूरी प्राप्त करने में विफल रहे हैं, तो दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र के मजदूरों से न्यूनतम मजदूरी का हक भी छीन लिया गया है और उन्हें वह मजदूरी दी जा रही है जिसमें मात्र भुखमरी ही हो सकती है।

इन सारी बातों से जाहिर हो जाता है कि न्यूनतम मजदूरी के सिद्धांत की एक स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए जो सही होने के साथ -साथ गतिशील भी हो। फिर, मजदूरी में संशोधन भी हर पाँच साल की बजाय दो साल के बाद होना चाहिए। इस तरह के संशोधन में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का भी हिसाब रखना चाहिए। इस अधिनियम को भी संशोधित किया जाना चाहिए ताकि यह कानूनी रूप से बाध्यकारी और अनिवार्य हो तथा इसको कार्यरूप देने और लागू करवाने के लिए प्रशासनिक तंत्र को और मजबूत और चुस्त-दुरुस्त बनाया जाए।

इन सारी बातों से जाहिर हो जाता है कि न्यूनतम मजदूरी के सिद्धांत की एक स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए जो सही होने के साथ -साथ गतिशील भी हो। फिर, मजदूरी में संशोधन भी हर पाँच साल की बजाय दो साल के बाद होना चाहिए।

हमें सूचना भेजें

श्रमजीवी का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि संगठित और असंगठित क्षेत्रों में मजदूरों के प्रतिरोध, संघर्ष और उनके द्वारा किये जाने वाले प्रयोगों के बारे में एक खासे बड़े समुदाय को बताया जाए। *श्रमजीवी* का यह उद्देश्य तभी पूरा हो पायेगा जब आप हमारे साथ संवाद स्थापित करें। हमारे लिए यह संवाद सूचना का सबसे प्रामाणिक और सक्षम स्त्रोत होगा।

हमें लिखें

बेहतर दुनिया के लिए बहस

नासिर अतीक

लेबर, इनवॉयरमेन्ट एण्ड ग्लोबलाइजेशन
सोशल क्लॉज इन मल्टीलैटरल ट्रेड एग्रीमेन्ट्स: ए सदर्न रिसपांस
संपादक: जे जॉन और अनुराधा एम चेनाय
सेन्टर फॉर एजुकेशन एण्ड कम्युनिकेशन
173 ए, खिड़की गांव, मालवीय नगर,
नई दिल्ली 110 017
पृष्ठ 194, सजिल्द 175 रूपये, पेपरबैक 100 रूपये

क्या किसी देश में मजदूरों के अधिकार और काम के हालात उसके अंतरराष्ट्रीय व्यापार से संबंधित होने चाहिए? विश्व युद्ध के बाद यह सवाल विकसित देशों ने अलग -अलग ढंग से अलग -अलग मंचों पर उठाया है। अब जब विश्व की आर्थिक स्थिति में तेजी से बदलाव आ रहा है और पूँजी की गति और पहुँच बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जरिये बढ़ती जा रही है, यह सवाल और अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

कुछ कथित आधुनिक देशों की सरकारें और श्रमिक संगठन ज़ोर डाल रहे है कि ' सामाजिक धारा ' को बहुपक्षीय व्यापार संधि में शामिल किया जाए ताकि कम वेतन, काम करने की खराब स्थितियाँ, बाल और बंधुआ मजदूरी जैसी प्रथाएँ रोकी जा सकें। विकसित देशों का मानना है कि इस तरह की स्थितियाँ व प्रथाएँ, विकासशील देशों को विश्व व्यापार में लाभ देती हैं। उनके दृष्टिकोण से यह लाभ विकसित देशों के लिए बेहद हानिकारक है क्योंकि विकासशील देशों में प्रचलित सस्ती मजदूरी और इन देशों से सामान के निर्यात की वजह से विकसित देशों की अर्थव्यवस्था, विशेष रूप से वहाँ के रोजगार पर नकारात्मक असर पड़ रहा है। इसलिए विकसित देशों में ज्यादातर श्रमबहुल उद्योग बंद हो रहे है और मजदूर अपनी रोजी-रोटी खो रहे हैं।

" लेबर, इनवॉयरमेन्ट एण्ड ग्लोबलाइजेशन " में इन विषयों के उन तमाम पहलुओं का गहरा अध्ययन है जो आम तौर पर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करते। जब भी इस विषय पर बहस हुई है, वह इस अतिवादी या नकारात्मक सोच से आगे नहीं बढ़ी कि सामाजिक धारा को बहुपक्षीय व्यापार से बाहर रखा जाना चाहिए। हालाँकि किताब का उपशीर्षक ' सदर्न रिसपांस ' पूरी बहस को एक सीमित संदर्भ में रखता दिखाई देता है, लेकिन किताब के विभिन्न लेखों से बहुत सारे पहलू उभर कर सामने आते हैं। दरअसल इस किताब में एक नकली-सी सर्वानुमति पाने की कोशिश नहीं की गई है। यही वजह है कि एक ही विषय पर अलग-अलग विचार प्रकट किये गये हैं। और कई बार एक लेखक का विचार दूसरे लेखक के दृष्टिकोण के विपरीत जाता जान

पड़ता है।

विश्व व्यापार संगठन में सामाजिक धारा के मुद्दे पर किताब के सम्पादकों का दृष्टिकोण साफ है। उन्होनें विभिन्न विचारों को एक मंच मुहैया किया है। इसके बावजूद पूरी किताब में मौजूदा विश्व अर्थ व्यवस्था में मजदूरों के अधिकारों के प्रति एक गहरी प्रतिबद्धता दिखाई देती है।

अलग -अलग दृष्टिकोणों का स्वतंत्र रूप से इज़हार पाठक को समृद्ध ही नही करता है बल्कि उसके लिए उत्प्रेरक भी सिद्ध होता है। इस तरह अधिकांश लेखकों ने सामाजिक मुद्दों और श्रम, पर्यावरण, मानवाधिकार और भूमंडलीकरण के संदर्भ में अपना पक्ष बहुत स्पष्ट तरीके से प्रस्तुत किया है।

इस किताब के चार भाग है: श्रम, पर्यावरण, मानवाधिकार और दस्तावेज। और, इनमें प्रस्तुत विचार दो तरह के हैं: एक वह जो सामाजिक अंतर्वस्तु का समावेश अस्वीकार करता है और दूसरा वह जो प्रभावकारी औजार की जरूरत मानता है ताकि न्यूनतम श्रम स्तर सुरक्षित रहे। श्रम स्तर की सुरक्षा स्थानीय आन्दोलनों द्वारा सुनिश्चित की जानी चाहिए, न कि विश्व व्यापार संगठन के अधिकारियों द्वारा, जो दरअसल विकसित देशों के हितों की रक्षा करते हैं। सारे लेखक इस बात से सहमत हैं कि इस तरह का हस्तक्षेप विकासशील देशों की प्रभुसत्ता का उल्लंघन है।

मिसाल के तौर पर सी० पी० चन्द्रशेखर का मानना है कि सामाजिक घाटे को बहुपक्षीय व्यापार संधि में शामिल करना वास्तव में एक असमान सम्बंध स्वीकार करना होगा क्योंकि श्रम स्थितियों की परिभाषा और उसके अमल की देख -रेख की जिम्मेदारी ऐसे निर्णायकों के हाथों में होगी जो किसी भी तरह से 'तटस्थ निर्णायक' नहीं माने जा सकते। इस तरह के मुद्दों में चूँकि अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का अपना स्वार्थ शामिल होता है, वे विकसित देशों के लिए सामाजिक धारा का भी गलत इस्तेमाल कर सकते हैं और व्यापार में इसका हथियार की तरह प्रयोग कर सकते हैं। मुचकुन्द दूबे इसी बहस को अतिवादी अंदाज से आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि श्रम स्तर का उद्देश्य पूरा करने के लिए व्यापार सीमित करने वाली नीतियाँ काफी आपत्तिजनक हैं। उनके अनुसार, सैद्धान्तिक रूप से व्यापार एवं बाजार में पहुँच उपलब्ध कराने के लिए इस तरह की शर्तें अनुचित हैं और व्यावहारिक रूप से हानिकारक। उनका कहना है कि इस तरह की नीतियाँ अक्सर मनमानी और पक्षपात करने वाली नीतियों में बदल जाती हैं और ये प्राय: वास्तविक समस्याओं का हल करने से कम, राजनीति से ज्यादा प्रेरित होती हैं।

सी०टी० कुरियन इस विषय को एक और दृष्टि से देखते हैं। उनका कहना है कि वास्तविक भूमंडलीकरण को दुनिया के मजदूरों के एक होने का एक रूप माना जा सकता है। उनका मानना है कि सामाजिक धारा जैसी नीतियाँ दुनिया के मजदूरों के बीच फासले बनाने के लिए हैं। इस संदर्भ में वह विकसित और विकासशील देशों में पूँजीवादी स्वार्थों की तुलना करते हैं। यह समझना कठिन नहीं है कि अमेरिकी पूँजीपतियों की अपने मजदूरों से कोई सहानुभूति नहीं है और भारतीय पूँजीपति हमेशा इस कोशिश में रहते हैं कि वेतन किस तरह कम रखा जाए। उनका यह भी मानना है कि सरकारें चाहे विकासशील देशों की हों या विकसित देशों की, दोनो ही पूँजीवादी हितों को राष्ट्रीय हितों की तरह पेश करतीं है। इसकी वजह यह है कि सरकारें मजदूरों के हितों से कहीं ज्यादा पूँजीवादी हितों के नजदीक होती हैं।

उभरते हुए भूमंडलीकरण में जहाँ श्रम अनावश्यक तत्व माना जा रहा है, वन्दना शिवा पर्यावरण के संदर्भ में कहती हैं कि सामाजिक धारा को दरअसल 'श्रम के स्तर ' तक सीमित कर दिया गया है। वह मुक्त व्यापार में एक प्रकार के सामाजिक श्रम के समावेश पर जोर डालती हैं । ऐसा काम रोजी रोटी और सामाजिक एकीकरण पर व्यापारिक उदारता का असर तय करेगा। वे स्थानीय समुदायों के सशक्तीकरण पर भी जोर देती हैं जिससे वे पर्यावरण व जीविकोपार्जन को प्रभावित करने वाले व्यापार व पूँजीनिवेश का पैटर्न खुद तय कर सकें।

सुजाता घोटोस्कर उन लोगों में से हैं जो सामाजिक धारा को बहुपक्षीय व्यापार में शामिल करने का पक्ष लेती हैं। साथ ही वह एक प्रभावी मशीनरी की पक्षधर हैं जो न्यूनतम श्रम स्तर की सुरक्षा और देख -रेख कर सके। अपने लेख में वह 'हमारे देश का प्रतियोगी लाभ समाप्त होना ' जैसे दृष्टिकोण की आलोचना करती हैं। वह ' हमारा फायदा ' की अवधारणा पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। उनकी राय में सबसे पहले यह समझा जाना चाहिए कि ' हमारे (किसके?) फायदे ' का मतलब क्या है?

उनके अनुसार अपना जीवन बेहतर बनाने के लिए मजदूरों का हर संघर्ष इस तरह के वाद विवाद में उलझ कर रह जाएगा। कैलाश सत्यार्थी अपने लेख में गरीबी और समाजार्थिक हालात की वजह से देश में बाल मजदूरी जारी रखने के किसी भी तर्क के खिलाफ हैं। वह सामाजिक धारा का समर्थन करते हैं, साथ ही विश्व व्यापार संगठन के बाहर एक स्वतंत्र रूप से संचालित मशीनरी के पक्ष में हैं।

उन्हें कालीन उद्योग में बाल मजदूरी प्रथा हतोत्साहित करने की दिशा में रगमार्ग फाउंडेशन की आरंभिक सफलता से काफी उम्मीदें हैं। रगमार्क का एकमात्र तजुर्बा अपने आप में एक अच्छी शुरूआत है, लेकिन क्या यह तजुर्बा देश के दूसरे उद्योगों में बाल मजदूरी कम करने में प्रभावी सिद्ध होगा? दरअसल कोई ऐसा प्रयोग जो किसी उद्योग विशेष में आंशिक रूप से सफल हो, जरूरी नहीं कि वह दूसरे उद्योगों में भी बाल मजदूरी कम करने की दिशा में सफल ही साबित होगा। असीम राय किताब की समाप्ति यथार्थवादी और संतुलित बहस के साथ करते हैं। उनका मानना है कि अतिवादी और नकारात्मक रवैया हालांकि एक मान्य राष्ट्रीय भावना दर्शाता है, पर इतना ही काफी नहीं है। श्रम के नज़रिये से इस तरह का रवैया इस मुद्दे पर पूरी तरह रोशनी डालने के लिए पर्याप्त नहीं है। उनके अनुसार इस काल में पूँजी की गतिशीलता तेजी से बढ़ती जा रही है। असल चुनौती है एक ऐसी प्रतिक्रिया, जो राष्ट्र और श्रम दोनों के हितों को दर्शाए। कहना न होगा कि राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था से जुड़ा है और श्रम अंतरराष्ट्रीयता का हिस्सा है। यह किताब श्रम के नजरिये से सामाजिक धारा पर शायद सबसे पहला विस्तृत दस्तावेज है। इसमें संदेह नहीं कि यह किताब श्रम, पर्यावरण और व्यापार के अध्ययनों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

अगले अंक में

श्रम – 97

- श्रमिकों से जुड़े संघर्षों, विवादों, सरकारी नीतियों, मुकदमों आदि का सालाना दस्तावेज
- विभिन्न रुझानों पर विशेष रपटें
- बातचीत
- विश्व श्रम रिपोर्ट **1997 - 98** की समीक्षा

श्रमजीवी

श्रम व आर्थिक विषयों की त्रैमासिक पत्रिका

इस अंक में

(जनवरी–मार्च 1998)

संपादकीय		1
विशेष रपट	न्यूनतम मजदूरी : गरीबी, बेरोजगारी, तंगहाली के खिलाफ एक औजार *जे जॉन, मुकुल शर्मा*	3
रपट	असंगतियों में फँसा संगठित क्षेत्र *मुकुल शर्मा*	16
	कानपुर ठेका मजदूरों की आर–पार की लड़ाई *देवी प्रसाद मिश्र*	19
	धारूहेड़ा पुलिस गोलीबारी के बाद	23
आँखिन देखी	शोषण के आउट हाउस: फार्म हाउस *संजय कुमार मिश्रा*	25
विश्लेषण	कैसे तय हो न्यूनतम मजदूरी? *प्रीत रस्तोगी व एम० बी० श्रीनिवासन*	29
किताबें	बेहतर दुनिया के लिए बहस *नासिर अतीक*	34